–मुद्रक–

राष्ट्रीय ऑफसेट प्रिंटर्स

बी–१६२, जिगर कालोनी, मुरादाबाद.

बोध क्रम ४७ ।। ओ३म् खं ब्रह्म ।। प्रकाश क्रम १८

लेखक

वीरेन्द्र गुप्तः

भेंट कर्ता

श्री सतीश चन्द्र जी गुप्ता एडवोकेट

एवं

श्री रामअवतार जी (रम्मन बाबू)

सृष्टयाब्द १,९७,२९,४९,१०३

मानव सृष्टि वेद काल १,९६,०८,५३,१०३

दयानन्दाब्द १७९

विक्रम सम्वत् २०५९ सन् २००२ ई०

प्रकाशक :—

वेद संस्थान

मण्डी चौक, मुरादाबाद

प्राप्ति स्थान :—

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
मण्डी चौक, मुरादाबाद

प्रथम संस्करण
दो हज़ार

मूल्य — स्वाध्याय

वेद संस्थान

की साहित्य सेवा

वेद संस्थान की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०४८ रविवार १९ मार्च १९९१ को हुई।

वेद संस्थान का लक्ष्य है—सद्साहित्य अल्पमूल्य पर अथवा निःशुल्क आपके पास तक पहुँचता रहे। हमने अब तक १—विनयामृत सिन्धु, २— अभिनन्दनीय व्यक्तित्व, ३— विवेकशील बच्चे, ४— जन्म दिवस, ५— योग परिणति, ६— करवा चौथ, ७— दैनिक पंच महायज्ञ, ८— गोधन, ९— पर्वमाला, १०— दाम्पत्य दिवस, ११— छलकपट और वास्तविकता, १२— ईश महिमा, १३— मन की अपार शक्ति १४— रत्न माला १५— नयन भास्कर १६— युधिष्ठिर यज्ञ गीता, १७— यज्ञों का महत्व नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसी श्रंखला में श्री वीरेन्द्र गुप्तः द्वारा रचित कृति १८ वीं पुस्तक वेद—उद्गीत प्रस्तुत है। यह प्रस्तुति वेद संस्थान की और सहयोग दानी महानुभावों का है। इस सहयोग और उदार भाव के लिये वेद संस्थान उनका आभारी है।

हमें आशा है कि आप वेद संस्थान को पूर्ण सहयोग देकर नूतन साहित्य प्रकाशित करने का अवसर अवश्य प्रदान करते रहेंगे।

विजय कुमार
प्रकाशन सचिव

अम्बरीष कुमार
सचिव

वेद संस्थान
मण्डी चौक, मुरादाबाद

लेखक परिचय

नाम — श्री वीरेन्द्र गुप्तः
जन्म — ३ अगस्त, १९२७ ई०,
मुरादाबाद
सम्प्रति — व्यवसाय

सम्मान :

१— १४ सितम्बर १९८२ राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रसार समिति।

२— ३ अक्टूबर १९८२ आर्यसमाज मण्डी बाँस, मुरादाबाद।

३— १४ सितम्बर १९८८ श्री यशपाल सिंह स्मृति साहित्य शोधपीठ, मुरादावाद।

४— ३० सितम्बर १९८८ अहिवरण सम्मान पुरालेखन केन्द्र, मुरादाबाद।

५— २ जनवरी १९९२ साहू शिवशक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति, मुरादाबाद द्वारा साहित्य सम्मान।

६— ७ जनवरी १९९६ अभिनन्दन समिति द्वारा नागरिक अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ तथा सामूहिक अभिनन्दन पत्र।

७— ६ मार्च १९९९ अखिल भारतीय माथुर वैश्य महासभा द्वारा ग्वालियर सम्मेलन में (साहित्य) समाज शिरोमणी सम्मान।

८— ९ मई १९९९ विराट आर्य सम्मेलन पश्चिमी उत्तर प्रदेश मेरठ (आर्य शिरोमणी) सम्मान।

९— २६ जनवरी २००० माथुर वैश्य मण्डल, मुरादाबाद द्वारा (साहित्यक शताब्दी पुरुष) सम्मान।

१०— २५ फरवरी २००० (अमृत महोत्सव) के अवसर पर संस्कार भारती, मुरादाबाद द्वारा अभिनन्दन।

११— १५ सितम्बर २००० (राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्त्राब्दी सम्मान) सहस्त्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन नई देहली के द्वारा। सँयुक्त राष्ट्र संघ (यूनैस्को) आदि से सम्बन्ध।

१२— १७ सितम्बर २००० ''ज्ञान मन्दिर पुस्तकालय, रामपुर'' हिन्दी दिवस पर सम्मान।

उल्लेख :

१— हिन्दी साहित्य का इतिहास ले० डा० आलोक रस्तोगी एवं श्री शरण, देहली १९८८।

२— "आर्य समाज के प्रखरव्यक्तित्व" दिव्य पब्लिकेशन केसरगंज अजमेर १९८९।

३— "आर्य लेखक कोष" दयानन्द अध्ययन संस्थान जयपुर १९९१।

४— एशिया—पैसिफिक "हू इज़ हू" (खण्ड ३) देहली २०००।

प्रकाशित कृतियाँ :

१— इच्छानुसार सन्तान, २— लौकिट (उपन्यास), ३— पुत्र प्राप्ति का साधन, ४— पाणिग्रहण संस्कार विधि, ५— How to be get a son,(अनुवादित) ६— सीमित परिवार, ७— बोध रात्रि, ८— धार्मिक चर्चा, ९— कर्म चर्चा, १०— सस्ती पूजा, ११— वेद में क्या है? १२— गर्भावस्था की उपासना, १३— वेद की चार शक्तियाँ, १४— कामनाओं की पूर्ति कैसे,
१५— नींव के पत्थर, १६— यज्ञों का महत्व, १७— ज्ञान दीप,
१८— The light of learning (अनुवादित) १९— दैनिक पंच महायज्ञ,
२०— दिव्य दर्शन, २१— दस नियम, २२— पतन क्यों होता है,
२३— विवेक कब जागता है, २४— ज्ञान कर्म उपासना, २५— वेद दर्शन, २६— वेदांग परिचय, २७— संस्कार, २८— निरकार साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन, २९— मनुर्भव, ३०— अदीनास्याम, ३१— गायत्री साधन, ३२— नव सम्वत्, ३३— आनुपक (कहानियाँ), ३४— विवेकशील बच्चे, ३५— जन्म दिवस, ३६— करवा चौथ, ३७— योग परिणति, ३८— पर्वमाला, ३९— दाम्पत्यदिवस, ४०— छलकपट और वास्तविकता, ४१— श्रद्धा सुमन, ४२— माथुर वैश्यों का उद्गम, ४३— ईश महिमा, ४४— मन की अपार शक्ति, ४५— नयन भास्कर, ४६— युधिष्ठिर यक्ष गीता, ४७— वेद उद्गीत।

अनुक्रम

प्रकाशकीय

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनेक घटनाऐं ऐसी घटती हैं जिनसे उसके विचारों में लहर उठती है, परन्तु उन वैचारिक लहरों की गहराई में पैठ कर अनमोल मोती चुनने वाले नगण्य व्यक्ति ही, इतिहास के पृष्ठों की मुख्य गणना में महत्वपूर्ण स्थान पा जाते हैं। ऐसा ही एक व्यक्तित्व है श्री वीरेन्द्र गुप्त:। श्री गुप्त: जी के जीवन की एक ऐसी ही घटना ने "इच्छानुसार सन्तान" जैसी अमूल्य धरोहर का निर्माण किया। जब से लेकर आज तक श्री गुप्त: जी ऐसे ही अमूल्य ४७ दुर्लभ साहित्यिक रत्न समाज को देकर कृतार्थ कर चुके हैं।

जिसके लिये भारतीय समाज की ओर से ७ जनवरी १९९६ दिन रविवार को लब्ध प्रतिष्ठित संस्थान "वेद संस्थान" के तत्वाधान में आर्य मनीषी प्रो० शेर सिंह जी, पूर्व रक्षा राज्य मन्त्री, भारत सरकार एवं डा० भारत भूषण जी अध्यक्ष वेद विभाग गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार, के द्वारा नागरिक अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ और शाल भेंट किया गया, जिसमें अन्य प्रतिष्ठित संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भी श्री गुप्त: जी का अभिनन्दन किया तथा प्रार्थना की कि इसी प्रकार आगे भी भारतीय समाज का ही नहीं वरन् समूची मानव जाति का मार्ग प्रशस्त करते रहें।

इसी क्रम में श्री वीरेन्द्र गुप्त: जी की यह नवीनतम कृति "वेद उद्‌गीत" मानव समाज की अमूल्य धरोहर है। इस कृति के माध्यम से श्री गुप्त: जी ने 'वेद' की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाने वालों का मुँह ही बन्द नहीं किया है वरन् 'वेद' वाणी को जिस प्रकार हमारे पूर्वज महर्षियों ने सुरक्षा कवच व कसौटी प्रदान की उसका पूर्ण विवरण दिया है तथा 'वेद मन्त्रों' के साथ खिलवाड़ करने की चेष्टा करने वालों की समस्त सम्भावनाओं को भी ध्वस्त कर दिया है।

विजय कुमार
प्रकाशन सचिव
वेद संस्थान, मुरादाबाद

श्रीमती शैल गुप्ता एवं श्री सतीश चन्द्र गुप्ता
(एडवोकेट)

श्रीमती विजय लक्ष्मी एवं श्री रामअवतार जी
(रम्मन बाबू)

वेद गद्गीत | वीरेन्द्र गुप्तः

।।ओ३म्।।

पूर्वावलोकन

क्रान्तिकारी आर्य सन्यासी स्वामी काव्यानन्द सरस्वती जी महाराज का १९८१ ई० में आर्य समाज मण्डी बाँस, मुरादाबाद में आगमन हुआ था। उनके प्रवचन से यह ज्ञात हुआ कि वेद पाठ की संहिता–पाठ के साथ–साथ १० प्रकार के और पाठ भी होते हैं। यह सुनकर मेरी जिज्ञासा बढ़ी और मैंने उनसे इसी उत्सुकता के साथ भेंट की, कि वह १० पाठ कौन–कौन से होते हैं। स्वामी काव्यानन्द जी ने उन पाठों के नाम मुझे नोट कराये और मैसूर में पौराणिक पंडितों से हुए शास्त्रार्थ की चर्चा भी की। उसी समय स्वामी जी महाराज ने गायत्री मन्त्र को 'जटा' पाठ में सुनाया था। मैंने उसे १९८३ ई० में प्रकाशित पुस्तक 'दस नियम' में अंकित किया है।

कुछ समय के पश्चात् मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह जाना जाय कि उक्त पाठों के पाठ क्रम क्या हैं और यह पाठ किस प्रकार से होते हैं। देवयोग से स्वामी काव्यनन्द जी महाराज स्वर्ग सिधार गये और आगे पाठों के बारे में कोई जानकारी न मिल सकी, परन्तु मैं इसकी खोज में लगा ही रहा।

कई विद्वानों से चर्चा भी की परन्तु कोई समाधान न मिला। लगभग १९९१ ई० के आस पास आर्य समाज स्टेशन रोड, मुरादाबाद पर वेद सम्मेलन का आयोजन हुआ था उसमें गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार से डा० भारत भूषण जी आये थे उन्होंने अपने प्रवचन में इन पाठों की चर्चा १,२,३ की गिनती से की थी। मुझे कुछ आशा बनी और मैंने डा० भारत भूषण जी को पत्र लिखा परन्तु बहुत समय तक कोई उत्तर नहीं आया। १९९५ ई० में आर्य समाज मण्डी बाँस, मुरादाबाद के वार्षिकोत्सव पर डा० भारत भूषण जी का आगमन हुआ और उन्होंने मेरी दुकान पर आने की महान् कृपा की। मैंने उनसे पुनः उन पाठों के विषय में चर्चा की, तो बताया कि मैंने इस विषय को सातवलेकर जी के ऋग्वेद मूल में देखा है। मैंने कहा आप उसकी छाया प्रति मेरे पास भेजने की कृपा करें। ७ जनवरी १९९६ ई० के कार्यक्रम में श्री भारत भूषण जी मुरादाबाद आये और वह छाया प्रति मुझे प्राप्त हो गई।

वीरेन्द्र गुप्तः

मैंने श्री अमरनाथ जी से भी इस विषय पर चर्चा की थी। उन्होंने कहा इस प्रकार की एक पुस्तक मेरे पास है जो मेरी समझ में कुछ नहीं आई, आप उसे देख लें कुछ इसी विषय की ही लगती है, मैं उसे लाकर आपको दूँगा। कुछ ही दिनों के पश्चात् ही वह पुस्तक मेरे पास आ गई। उसमें यही विषय था। इस प्रकार १९८१ ई० में आये विचार का १९९६ ई० में प्रभु कृपा से मूर्त रूप प्राप्त होने का अवसर आया।

वेद की रक्षार्थ इन पाठों की पद्धति हमारे मनीषियों ने बड़े कठोर तप और परिश्रम से सृजित कर सब के हितार्थ प्रस्तुत कर वेद वाणी की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाने के लिये किया था। इस वेद पाठ विज्ञान को नष्ट होने से बचाने का प्रयत्न किया पं० स्वामी शिवानन्द तीर्थ परिव्राजक जी महाराज ने। उन्होंने इसे पुस्तक रूप देकर विक्रम सम्वत् १९९४ में तैयार कर प्रकाशित किया। इतनी पुरानी पुस्तक को सुरक्षित रखा आर्य समाज मुजफ्फरपुर के पुस्तकालय ने। अब यह पुस्तक अप्राप्त है। श्री पाद्दामोदर सातवलेकर जी का यह क्रम पाठ ऋग्वेद मूल में अंकित है, जो हर किसी को प्राप्त होना संभव नहीं। मैंने सोचा इसे विधिवत लिखकर प्रकाशित क्यों न किया जाय।

इसक़ी उपादेयता और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए मैंने इसे 'वेद उद्गीत' के नाम से प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक की रचना में जिन विभूतियों का पूर्ण अथवा आंशिक भी सहयोग है, जिनकी हमने यथा स्थान चर्चा भी की है, मैं उन सभी का हृदय से आभारी हूँ। साथ में प्राचीन व्याकरण के प्रकाण्ड पं० वयोवृद्ध पूज्य श्री आचार्य भगवतसहाय जी ने इसकी भूमिका लिखकर इस लघु एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ का जो गौरव बढ़ाया है, वह अव्यक्त है। इस उपकार के लिये मैं आचार्य प्रवर को हृदय से नमन करता हूँ।

वीरेन्द्र गुप्तः

दिव्य छवि

विद्वान् मनीषि अपनी छवि छोड़कर अमर हो जाते हैं। इसी प्रकार पूज्य प्रवर प्राचीन व्याकरण के आचार्य श्रद्धेय भगवत सहाय शर्मा जी भी फाल्गुन शुक्ल पौर्णमासी सम्वत् २०५३ सोमवार २४ मार्च १९९१ को इन्द्रप्रस्थ (देहली) में इस नश्वर पंच भौतिक शरीर के मोह को त्याग कर नवीन जीवन धारण की दिशा की ओर अग्रसर हो, अमर हो गये। वेद उद्गीत की अन्तिम भूमिका २०/७/९६ को लिख कर चिर स्मृति रूप छवि को छोड़ कर सिधार गये।

शंका

सन् १९७५ ई० में 'वेद में क्या है' पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में यजुर्वेद २३। १९ के (गणानां त्वा०) मन्त्र की तुलनात्मक व्याख्या महिधर और महर्षि दयानन्द सरस्वती की दी है। सभी वेद भाष्य कारों ने भट्टोदी दीक्षित रचित सिद्धान्त कौमदी और इतिहास को जोड़कर भाष्य किये हैं, जो नितान्त भ्रामक सिद्ध होते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने, दण्डी गुरु विरजानन्द जी महाराज के निर्दिष्ट मार्ग के अनुसार अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त और निघन्टु के द्वारा, इतिहास को छोड़ कर वेद भाष्य किया है। क्योंकि वेद आदि सृष्टि से हैं और इतिहास की रचना बहुत बाद की है। वेद भाष्य करते समय इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि हम आदिदैविक, आदिभौतिक, अध्यात्मिक एवं ज्ञान परक, यज्ञ परक और उपासना परक तथा मन्त्र के देवता अर्थात् मन्त्र के विषय को भी ध्यान में रखकर वेद भाष्य करना चाहिये। इसी कारण इनका वेद भाष्य संसार में श्रेष्ठ और उपयोगी माना जाता है।

श्री करपात्री जी महाराज ने वेद भाष्य करने का विचार बनाया। मैंने उनसे सम्पर्क करना चाहा परन्तु न हो सका। इसी बीच साधु समाज के महामन्त्री 'सेवा निवृत प्रधानाचार्य' जी के मुरादाबाद आगमन का समाचार मिला। मैं उनसे मिलने गया और एक पुस्तक 'वेद में क्या है' भेंट की। मैंने कहा—श्री करपात्री जी वेद भाष्य का

विचार बना रहे हैं। यदि ऐसा है तो मैं उनके पास एक विचार भेजना चाहता हूँ कि वह भट्टोदी दीक्षित की सिद्धान्त कौमदी और इतिहास को छोड़ कर, अष्टाध्यायी महाभाष्य, निरुक्त और निघण्टु के सहयोग से वेद भाष्य करें तो समाज का बहुत बड़ा कल्याण होगा। करपात्री जी इस कार्य को न कर पाये और गोलोक सिधार गये।

हमारे सभी प्राचीन ग्रन्थों में लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से मिलावट का कार्य युद्धस्तर पर प्रारम्भ हुआ। हमारा कोई भी ग्रन्थ इस महामारी के प्रकोप के भाजन से बच नहीं पाया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज आर्य समाज के दस नियमों के तीसरे नियम में कहते हैं कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' यह घोषणा कैसे कर दी? क्या उन्होंने वेद के एक—एक मन्त्र का किसी प्रयोगशाला में बैठकर परीक्षण किया था? हमारा यह प्रश्न है। क्या अन्य ग्रन्थों के साथ मिलावट की महामारी के कुचक्र से वेद अछूते बचे रहे होंगे? इसमें हमें सन्देह है। जब विषाक्त—पन सारे में व्यापा हुआ हो तो उससे वेद कैसे अछूते रह सकेंगे? यह शंका स्वाभाविक है और इसका समाधान होना ही चाहिये।

वेद की भी एक प्रयोगशाला है। उसके आठ केन्द्र हैं, इनको वेद चर्चन केन्द्र कहते हैं। हर केन्द्र के विद्वान् को घनान्त वेद पाठी कहते हैं। चारो वेदों के मन्त्रों के एक—एक अक्षर को इन आठों वेद चर्चन केन्द्रों में जाकर घनान्त वेद पाठी विद्वानों से पाठों को सुनकर ऋषिवर दयानन्द ने कठोर परिश्रम से एक—एक अक्षर, पद, पाठ आदि को शुद्ध करके ही स्वीकार किया इसके पश्चात् ही घोषित किया कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' हमने इन चर्चन वेद पाठों की आगे चर्चा की है।

कुछ महानुभावों का कथन है कि वेदों के बहुत से मन्त्र अभी भी अप्राप्त हैं और कुछ का मानना है कि वेदों में आवश्यकता के अनुसार अनेकबार मन्त्रों को बढ़ाया गया है। यह दोनों ही चर्चायें नितान्त मिथ्या और भ्रम को उत्पन्न करने वाली हैं। मेरा मानना है कि वर्तमान समय में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज जैसा वेदों का अन्वेषक और खोजक संसार में कोई नहीं हुआ। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण समाधिस्थ शक्ति और सामर्थ्य को लगा कर वेदों के सर्वाङ्गों की परिपूर्णता प्राप्त करके ही प्रस्तुत किये और 'वेद सब सत्य

विद्याओं का पुस्तक है' की घोषणा की अर्थात् वेदों में न कोई मन्त्र कम है और न कभी कोई मन्त्र बढ़ाया गया है। वेद जैसा आदि सृष्टि में थे वैसे ही आज तक विद्यमान हैं।

संसार में बहुत से वेद—भाष्यकार रहे हैं। सायणाचार्य, महीधर, उव्वट, गौरधर, धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पं० जयदेव, अनन्ताचार्य, हलायुध, हरि शरण, मैक्समूलर, रोजन, विलियम, आदि अनेक वेद—भाष्यकार हैं, इन सबकी नामावली मैंने वेदांग परिचय में दी है। इनमें से किसी ने भी वेद मन्त्रों के अप्राप्त होने की अथवा समय—समय पर बढ़ाये जाने की कोई चर्चा ही नहीं की। इससे यह दोनों आपत्तियाँ स्वत: निर्मूल हो जाती हैं। इस प्रकार की शंकायें वे ही पुरुष उठाते हैं जिन्होंने वेद देखे तक भी नहीं। कुछ ऐसे भी पुरुष हो सकते हैं, जिन्होंने दूसरों को प्रभावित करने के लिये वेद तो अपने पास रख छोड़े हैं परन्तु उनका स्वाध्याय नहीं किया।

हम ऋषि दयानन्द को तो मानते हैं परन्तु ऋषि दयानन्द का निर्देश नहीं मानते। बस यहीं भ्रम पैदा हो जाता है। हम ऋषि दयानन्द को माने या न माने परन्तु ऋषि दयानन्द के निर्देश को माने और उसी पर दृढ़ता पूर्वक विश्वास करें और व्यवहार करें तो हमारी सारी शंकाओं का समाधान होता चला जायेगा।

आप्त पुरुष योगीराज श्री कृष्ण का सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की २८ वीं चतुर्युगी के द्वापर ८, ६३, ९१६ वें वर्ष के भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुद्धवार रोहणी नक्षत्र में अर्द्ध रात्रि के समय मामा कंस की कारागार में वसुदेव की गृहस्वामिनी (पत्नी) देवकी के गर्भ से कलिकाल प्रारम्भ होने से ८४ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम सम्वत् २०५८ तथा ईसवीं २००१ से अर्थात् कलिकाल ५१०२ में ८४ मिलाकर अब से ५१८६ वर्ष पूर्व हुआ था।

श्री कृष्ण को ७ वर्ष की आयु में ही विद्या प्राप्ति के लिये सन्दीपन गुरु के आश्रम पर भेज दिया। कठोर तप से श्रीकृष्ण ने ११ वर्ष में ही वेद चर्चन विद्या के विकृति पाठों की भी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर 'घनान्त' उपाधि से अलंकृत हुए थे। सामवेद जो पूर्ण गायन का वेद है उस पर श्री कृष्ण जी का पूर्ण अधिकार था, वह वेद चर्चन के पाठों का ही मुरली पर मधुर स्वर से गायन करते थे। यही

घनान्त उपाधि आगे चलकर घनश्याम रूप में चर्चित होने लगी।

महाभारत के भयंकर विनाशकारी युद्ध ने बड़े—बड़े विद्वान्, घनान्त वेद पाठी, महारथी, योद्धा आदि सभी को गहरी नींद सुलाकर भारत भूमि को घनान्त वेद पाठी विद्वानों और योद्धाओं से शून्य कर दिया। विद्या का सूर्य भारत भूमि से अस्ताचल की ओर जाने लगा। परिणाम स्वरूप भारतवासी अविद्या अंधकार में गोते लगाने लगे। नाना प्रकार के अनेकों मतमतान्तर उपजने लगे।

पाणिनी ऋषि ने वेद व्याकरण की स्थापना कर अष्टाध्यायी की रचना की। पतञ्जली ऋषि ने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य तैयार किया और काश्मीर निवासी आचार्य कय्यट ने महाभाष्य पर एक और वृहद् भाष्य तैयार किया। स्वामी पूर्णानन्द जी ने प्रज्ञा चक्षु विरजानन्द को अष्टाध्यायी की व्याकरण का पूर्ण ज्ञानोपदेश दिया और दण्डी गुरु विरजानन्द जी ने अखण्ड ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द को अपने परमज्ञानी, सुयोग्य शिष्य के रूप में दीक्षित कर वेद ज्ञान की रक्षार्थ भारत माता को अर्पित कर दिया। गुरुदेव दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने वेद चर्चन प्रयोगशालाओं के घनान्त वेद पाठियों के पास जाकर चारो वेदों के प्रत्येक मन्त्र के एक—एक अक्षर की शुद्धता को प्रमाणित करके सबके सामने प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार वेदों की सत्यता, शुद्धता और परिपूर्णता पर लगे सारे प्रश्न चिन्हों का पूर्ण समाधान हो जाता है, और वेदों की शुद्धता और परिपूर्णता की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है।

द्वे वचसी

अरबों वर्ष पहले समाधि–अवस्था में होकर चार ऋषियों ने अपने अन्तस् में स्फुरित जिस ईश्वरीय ज्ञान को श्रवण किया था उसकी श्रुति संज्ञा है – 'तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम्' (ऋग्० ४–५०–१)।

प्राचीन काल में शिष्य वेदों को गुरुमुख से श्रवण कर कण्ठस्थ कर लिया करते थे। इसलिये भी गुरु से सुनने के कारण इसे 'श्रुति' कहा जाता है। 'श्रुति' की रक्षा हमारे मनीषी विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के इसके पाठों द्वारा की है और ब्राह्मणेन निष्कारण षडण्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इस पातञ्जल–कथन को सार्थक किया है, ऐसे विप्रों, ऋषियों के चरणों में सादर नमन करने को मन करता है–'अधीतम ध्यापितमर्जितं यशः न शोचनीयं किमपीह विद्यते'।

सस्वर वेद पाठ का विशेष महत्व है। हमारे संस्कृत साहित्य में विशेषकर धर्मशास्त्र ग्रन्थों में मध्यकाल में स्वार्थी लोगों द्वारा प्रक्षेप किये गये। जिस कारण समाज में वैमनस्यता, चीन की दीवार की तरह आज हमारे सम्मुख खड़ी है। परन्तु वैदिक संहिताओं में यह प्रक्षेप संभव नहीं हो पाया। इसका जो एक मात्र कारण है वह मन्त्रों का सस्वर वाचन ही है जो विभिन्न 'विकृति पाठों' द्वारा होता है। आधुनिक युग में भी समाज में पनपी कई कुरीतियों, जैसे–सतीप्रथा, मूर्तिपूजा आदि गलत परम्पराओं को भी तथाकथित वेदविद्वानों ने वेद से सिद्ध करने का दुःसाहस किया। जिसका सटीक निराकरण तत्तत् मन्त्रों के विकृतपाठों द्वारा किया गया। ऐसे कुछ उदाहरण हैं–

१– न तस्य प्रतिमा अस्ति (यजु०)

२– पत्नीरविधवा–योनिमग्रे (ऋग्०)

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम में 'न' उदात्त का 'तस्य' स्वरित के साथ मेलकर 'नतस्य' करने का दुःसाहस किया गया। जबकि उदात्त का स्वरित के साथ मेल नहीं होता है। द्वितीय उदाहरण में 'योनिम् अग्रे' के स्थान पर 'योनिम् अग्ने' और 'पत्नीरविधवा' को पत्नीः विधवा' करने का दुःसाहस किया गया। यदि सस्वर वेदपाठ की परम्परा इस देश में न होती तो यह निश्चित था कि वेदों में भी

मिलावट हों गयी होती।

स्वामी दयानन्द जी ने वेदों के तत्कालीन सस्वर वेदपाठियों से सस्वर वेदपाठ का श्रवणकर वेदों की चार संहिताओं को ही प्रामाणिक माना था।

स्वतन्त्र भारत में आर्य समाजी क्षेत्र में पहलीबार सस्वर वेदपाठ करने के सामान्य नियमों का परिचय देने वाली पुस्तक 'वेद–उद्गीत' को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। इसको श्री वीरेन्द्र गुप्त: जी ने बड़ी ही लगन से वर्षों के परिश्रम से लिखा है। स्वयं वेदाङ्गों के विद्वान न होते हुए भी अपने अध्यवसाय से इतना उत्तम ग्रन्थ लिखना निश्चय ही लेखक के स्तुत्य प्रयास को उजागर करता है।

यों तो वीरेन्द्र जी आर्यसमाज के मिशनरी व्यक्ति हैं। इन्होंने अनेक प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें 'वैदिक विवाह संस्कार पद्धति' से मैं आज तक वहुत प्रभावित था। अब ज्यों–ज्यों इनकी पुस्तकें पढ़ने को मिली त्यों–त्यों मेरी श्रद्धा इनके प्रति बढ़ती गई। परमात्मा से प्रार्थना है कि इन्हें उत्तम स्वास्थ्य मिले और इसी प्रकार समाज की सेवा करते रहें।

प्रस्तुत पुस्तक आर्यसमाज के क्षेत्र में ही नहीं अपितु जहां–जहां भी वेद–ध्वनि गुंजायमान होती है वहाँ सर्वत्र आदर प्राप्त करेगी–ऐसी आशा है। इन्हीं शब्दों के साथ –

विदुषां वशंवद:

हरिद्वार
(ऋपिवोधोत्सव
मार्च, २००२)

डा० भारतभूपण विद्यालंकार
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वेद
एवं
डीन प्राच्यविद्या संकाय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार–२४९ ४०४

ओ३म्

भूमिका

ओ३म् स्वस्तिपन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।

स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

भारत की प्राचीन परम्परा थी सभी वर्गों के बालक आचार्य के अन्तेवासी बनकर शिक्षा ग्रहण करते थे। दीक्षा के समय उनका उपनयन तथा वेदारम्भ संस्कार होता था। सभी के साथ समान व्यवहार किया जाता। राजा और रंक धनपति या निर्धन की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता था। इसके अनेक उदाहरण सामने आते हैं। श्रीकृष्ण और सुदामा ने सद्भाव से सन्दीपन गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण की। संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् एवं कवि वाण भट्ट ने अपनी विश्व विख्यात कादम्बरी में उल्लेख किया है कि महाराज तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड के शिक्षा ग्रहण निमित्त राजधानी से बाहर विद्या मन्दिर बनवाया, जिसमें विभिन्न विषयों के योग्यतम विद्वानों को प्रतिष्ठित किया। जबकी वह राजधानी में ही राजकुमार की शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था कर सकते थे। ऐसा क्यों?

१. बालक गुरुकुल में रह कर विद्या, बुद्धि और बल का संचय करते हुए विनय भी ग्रहण करता था। क्योंकि विद्या की सर्वप्रथम देन है विनय। "विद्या ददाति विनयम्" विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता (योग्यता) आती है। पात्रता ही सब गुणों की जननी है।

२. तिर्यग् योनि (पशु—पक्षी) में सहज ज्ञान की प्रबलता होती है किन्तु मानव में संसर्ग ज्ञान प्रमुख रहता है, गाय के ३,४ दिन के बच्चे को नदी या सरोवर में डाल दीजिये—स्वयं तैरने लगेगा किन्तु मानव बड़ा होकर भी बिना अभ्यास के जल में स्वयं नहीं तैर सकता। संसर्ग जन्य गुणों की प्राप्ति के लिये बालक को समवयस्क का संसर्ग आवश्यक है।

३. गुरुकुल में रहकर बालक में सुहृद् भाव एवं समभाव बद्ध मूल हो जाता है। इसके लिये कृपया 'नरोत्तमदास' का 'सुदामा चरित' पढें। मध्य काल युग में गुरुकुल प्रणाली लुप्त प्राय हो गई। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। वर्तमान

गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त अनेक मेधावी स्नातक समाज को मिले, जिन्होंने वैदिक दिशा में प्रशस्य कार्य किया।

शिक्षा सम्पन्न हो ने पर जब बालक को गृहस्थ आश्रम के योग्य समझते थे तब द्वितीय आश्रम में प्रवेश की अनुमति देते थें। यह आश्रम बड़ा दायित्व पूर्ण है।

यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति सं स्थितिम्।।

जिस प्रकार नदी—नद सागर में आश्रय पाते हैं। उसी प्रकार सभी आश्रमी गृहस्थ का आश्रय लेते हैं, चारों आश्रमों में केवल यही एक आश्रम उपार्जन करता है शेष तीन इसी पर निर्भर करते हैं। सद् गृहस्थ की यह भावना होती थी।

कबिरा इतना चाहिये जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय।।

इसी भावना से गृहस्थ सभी आश्रमियों की सेवा करते थे। विद्या, बुद्धि और बल से युक्त अन्तेवासी को आचार्य समावर्त्तन संस्कार (दीक्षान्त समारोह) के उपदेश देते थे।

सत्यंवद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

सदा सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो। प्रथम दो वाक्यों की यहाँ व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। इतना कहकर ही लेखनी को इस विषय में विराम देता हूँ।

सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्। धर्मो धारयति प्रजा:।

अब मैं तृतीय वाक्य 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' के विवेचना की ओर ध्यान आकृष्ट करता हूँ। गृहस्थ आश्रम प्रवेश करके भी अन्य कार्य—कलापों की भाँति स्वाध्याय भी परम अपेक्षणीय है। 'भिन्न रुचि र्हिलोकः' के अनुसार रुचि या प्रवृत्ति भले ही पृथक्—पृथक् हो किन्तु उसकी उपादेयतायें किसी को विमति नहीं। हमारे भारतवर्ष के प्रथम प्रधानमंत्री माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू अपने अति व्यस्त क्षणों में से स्वाध्याय को बराबर समय देते थे, उनके प्रकाशन ही इसके साक्षी हैं। यही प्रवृत्ति अन्य नेताओं और राज नेताओं की रही है।

हमारे परम आत्मीय श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी स्वाध्याय के कारण ही यहाँ तक पहुँचे हैं। स्वाध्याय के फल स्वरूप उनका व्यक्तित्व जब जनता के सामने आया तो और भी प्रखर हो उठा। कुछ दिन पूर्व उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर गुणी एवं गुणग्राही महानुभावों ने उनका सार्वजनिक एवं सर्वजनीन अभिनन्दन किया। जिसमें अनेक

गण—मान्य विद्वान् सहृदय साहित्यिक समाज सेवी नेताओं और राजनेताओं ने समारोह में पधार कर उसे सफल बनाया, जिससे गुप्तः जी के मनोबल को और बल मिला, साथ ही इस दिशा में उनका उत्साह पथ और प्रशस्त बन गया। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे अपने ध्येय में सदा सफल रहें।

हमारा भारतीय वाङ्मय दो प्रकार का है—
१— वैदिक वाङ्मय २— लौकिक वाङ्मय। दोनों प्रकार के वाङ्मय अत्यन्त समृद्ध तथा सर्वथा मौलिक हैं। चारों वेद (मूल पाठ) ऋग् यजुः, साम और अथर्व एवं इन वेदों के क्रमशः चार ब्राह्मण ग्रन्थ, चारों के आरण्यक, उपवेद, गृह्यसूत्र, स्मृतियाँ, उपांग शास्त्र, और उपनिषद् वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत आते हैं, शेष सभी वाङ्मय लौकिक वाङ्मय माना जाता है। लौकिक वाङ्मय से विविध विषयों का ज्ञान तथा मानसिक सन्तुष्टि मिलती है, किन्तु आध्यात्मिक तृप्ति एवं अन्तश्चेतना वैदिक वाङ्मय से ही मिलती है। प्रायः सभी मनीषी लौकिक को ही अपने स्वाध्याय का विषय बनाते हैं। वैदिक की ओर कम ही आकर्षित होते हैं। किन्तु हमारे गुप्तः जी का वैदिक स्वाध्याय की ओर अधिक झुकाव रहा है, उसी के फल स्वरूप 'वेद—उद्गीत' नामक ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ की उपादेयता के बारे में लेखक महोदय ने अपने 'पूर्वावलोकन' में जो लिखा है, उससे आगे अब और लिखना शेष नहीं रह जाता, फिर भी यह ग्रन्थ समीक्षार्थ निबन्धात्मक लघु लेख की अपेक्षा रखता है। इस समय में कुछ अस्वस्थ हूँ, अवस्था भी पर्याप्त आ चुकी है, सामर्थ्य होने पर लिखने का प्रयास करुँगा। इस ग्रन्थ को पाने के लिये गुप्तः जी ने जो लम्बा प्रयास किया वह स्तुत्य है। अन्त में आपने 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' सिद्ध कर ही दिया। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आपका स्वाध्याय सत्र अविरत गति से आगे बढ़ता रहे तथा पाठक वृन्द इसे अपना कर अपनी सहृदयता का परिचय देते रहें।

द्वितीय आषाढ़ शुक्लपक्ष चतुर्थी
शनिवार सं० २०५३ २०/७/९६

शुभकामनाओं के साथ—
विदुषीं वंशवद
भगवत सहाय शर्मा आचार्य

।।ओ३म्।।

अथ वेद उद्गीतानुशासनम्

वन्दना

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्।

अरावा चन मर्त्यः।।

ऋग्वेद ८। २८। ४

विद्वान्, तेजस्वी, उत्तमजन जैसा चाहते हैं उनकी वह इच्छा वैसी ही सफल होती है। अदानशील, मूर्ख मुनष्य उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः।

मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग्वेद ९। ६४। २१

रक्षक पुरुष उसकी स्तुति करते हैं। उत्तम चित्त वाले उसकी पूजा करते हैं। मिथ्या बुद्धि वाले जन डूब जाते हैं।

वेद उद्गीत

मानव अपनी स्वार्थ सिद्धि की पुष्टि के लिये सर्वोच्च सिद्धान्त में पाठ भेद कर के अर्थों को अपने अनुकूल रचने के लिये किसी भी भावना, विचार धारा और ज्ञान के स्वरूप को बदलने में कुछ भी संकोच नहीं करता और न ही भय का अनुभव करता है। मानव की प्रकृति है कि वह अंकुश में नहीं रहना चाहता, परन्तु इसमें दोष यही है कि वह अंकुश रहित होने पर निरंकुश भी हो जाता है।

हमारे मनीषियों ने मानव की इस प्रकृति को भली प्रकार जान लिया था। तभी उन दिव्य द्रष्टा ऋषियों ने प्रभु की परम पवित्र वेद वाणी की सुरक्षा के लिये एक दुर्ग का निर्माण किया उस दुर्ग का नाम था 'वेद चर्चन दुर्ग'। इस वेद चर्चन विधि दुर्ग में वेद मन्त्रों के विकृति पाठ की आठ रक्षा पंक्तियाँ नियुक्त की गईं। कुछ रक्षा पंक्तियों को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिये उनके साथ उपरक्षा पंक्तियों को भी सज्जित किया गया था। इस प्रकार की व्यूह रचना से वेद चर्चन दुर्ग को सुदृढ़ बनाया गया। वह किस लिये? वेद के पवित्र ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिये। यह प्रयास किया गया और इस सुदृढ़ दुर्ग के मध्य में रखा गया वेद। जो १, ९६, ०८, ५३, १०३ वर्ष से आज तक उस दिव्य ज्ञान की पवित्रता बनी हुई है। हालाँकि अनेक बार इस पवित्र ज्ञान को दूषित और भ्रष्ट करने का कुचक्र किया गया, परन्तु वह कभी सफल न हो सके, वेद चर्चन दुर्ग की इन रक्षा पंक्तियाँ ने समय—समय पर उन कुचक्रियों को करारी चोट दी और धराशायी भी कर दिया। इन रक्षा पंक्तियों के नाम इस प्रकार से हैं। प्रथम की तीन पंक्तियाँ सामान्य कही जाती हैं। १— संहिता पाठ, २— पदपाठ, ३— क्रमपाठ। इसके पश्चात् विकृति पाठों की रक्षा पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं। १— जटापाठ, २— माला पाठ, ३— शिखा पाठ, ४— रेखा पाठ, ५— ध्वजपाठ, ६— दण्ड पाठ, ७— रथ पाठ, ८— घन पाठ।

इन्हीं पाठों ने वेद मन्त्रों में प्रक्षिप्त अंशों की मिलावट करने वालों से वेद मन्त्रों की पवित्रता को सुरक्षित रखा है। तिस पर भी पौराणिक बन्धुओं ने यजुर्वेद ३२।३ के मन्त्र को बिगाड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने "न तस्य प्रतिमा अस्ति" जिसका अर्थ होता है

'उसकी कोई प्रतिमा नहीं' को बदल कर ''नतस्य प्रतिमा अस्ति'' कर दिया जिसका अर्थ बताया (नतस्य नम्रीभूतस्य तस्य प्रतिमा अस्ति) नम्र रूप को धारण करने वाले, उसकी प्रतिमा है। इस अशुद्ध पाठ के ऊपर क्रान्तिकारी आर्य सन्यासी स्वामी काव्यानन्द सरस्वती जी महाराज का मैसूर में दाक्षिणात्य वेद पाठी विद्वानों के सामने पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ और स्वामी जी ने उपरोक्त पाठों के द्वारा मन्त्र को प्रस्तुत करके सिद्ध कर दिया कि 'न' उदात्त है, 'तस्य' स्वरित है। उदात्त और स्वरित की सन्धि नहीं होती। सन्धि उदात्त—उदात्त की, अनुदात्त—अनुदात्त की और स्वरित—स्वरित की होती है। सवर्णी होने पर तो उदात्त—अनुदात्त की सन्धि हो सकती है और सवर्णी स्वरों में ही होते हैं। परन्तु व्यंजनों में सवर्णी सन्धि नहीं हो सकती। इसलिये यह पाठ ''नतस्य'' नहीं ''न तस्य'' ही है। इस घोषणा को दाक्षिणात्य घनान्त वेद पाठी विद्वानों ने भी स्वीकार किया। इसी कारण हमारे धर्म ग्रन्थ चारों वेद सुरक्षित हैं।

बंगाल प्रदेश में सतीदाह प्रथा का ताण्डव भयंकर रूप से छाया हुआ था, इस ताण्डव ने मातृत्व शाक्ति को अपमानित ही नहीं किया वरन् विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया था। इस भयंकर ज्वालाओं में ध्वस्त होते हुए समाज को देखकर महामानव राजा राममोहन राय का मन चीत्कार कर उठा, उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने के लिये 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। कट्टरवादी पंडितों ने इस का भरपूर विरोध किया, परन्तु राजा राममोहन राय अपने कार्य में लगे रहे। राजा राममोहन राय ने इस विनाश कारी सतीदाह प्रथा को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिये तथा नियमानुसार प्रतिबन्धित कराने के लिये तत्कालीन भारत के गर्वनर जनरल लार्ड विलियम वैंटिक के समय में कलकत्ता (वर्त्तमान में कोलकाता) उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की। इस का पौराणिक पंडितों ने विरोध किया और अपने पक्ष की पुष्टि में ऋग्वेद के उक्त मन्त्र को प्रस्तुत किया—

इमा नारीरविधवः सुपत्नीरंजनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

ऋग्वेद १०। १८। ७

पदार्थ—(इमाः) ये (अविधवाः) पति से युक्त (नारीः) स्त्रियाँ (सुपत्नीः) पति की पतिव्रता बनकर (अंजनेन सर्पिषा) घृतादि गंधयुक्त

पदार्थ से शोभित हो (सं विशन्तु) स्वगृह में प्रवेश करें। वे (अनश्रव:) अश्रु से रहित (अनमीवा:) रोग रहित, (सुरत्ना:) सुन्दर रत्न एवं रम्य गुणों वाली (जनय:) सन्तानों को जन्म देने में समर्थ स्त्रियाँ (अग्रे) आदर सहित पहले (योनिम् आ रोहन्त) गृह में प्रवेश करें।

भाव—पतिव्रता नारियाँ घृतादि गंधयुक्त पदार्थों से सुशोभित होकर स्वगृह में प्रविष्ट हों। वे अश्रु रहित, रोग रहित, सुन्दर रत्न एवं गुणवान् सन्तानों को जन्म देने में समर्थ नारियाँ आंदर से घर में आयें।

बंगाल के पंडितों ने सतीदाह प्रथा की पुष्टि में इस मन्त्र को प्रस्तुत किया, जबकी इस मन्त्र में सतीदाह कृत्य के बारे में कोई चर्चा नहीं है। इस मन्त्र में बंगाल के पंडितों ने दो स्थानों पर भेद करके प्रस्तुत किया।

१— (नारीरविधवा:) इस का पदच्छेद बनता है 'नारी—अविधवा:' जिसे बदल कर 'नारी—विधवा:' कर दिया। पदच्छेद के समय 'र' का 'अ' बन गया, बंगाल के पंडितों ने (र) को ही हटा दिया और आगे के अर्थ वही लेकर 'पतिव्रता, घृतादि सुगन्धित पदार्थ से शोभित, अश्रु रहित होकर'।

२— (योनिमग्रे) जिसका अर्थ है 'आदर सहित गृह में प्रवेश कर' करें। को बदल कर 'योनिमग्ने' कर जिसका अर्थ किया 'अग्नि में प्रवेश कर' कर दिया।

उस महामानव के मन में विचार उठा, जो आदि ग्रन्थ 'वेद' पवित्र ज्ञान से भरपूर है उसमें ऐसे जघन्य कृत्य की कैसे आज्ञा हो सकती है। उन्होंने बहुत से पंडितों से चर्चा की पर कोई समाधान न मिला। अनेक जगह पत्राचार किया तब जाकर दक्षिण के पंडितों की जानकारी मिली। राजा मनमोहन राय ने दक्षिण से घनान्त वेद पाठी विद्वान् पंडित को बुलाकर उनके द्वारा उक्त मन्त्र को जटा पाठ में प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया कि 'नारीरविधवा:' का पदच्छेद 'नारी अविधवा:' ही बनेगा और 'योनिमग्ने' नहीं यह 'योनिमग्रे' ही है। इस प्रकार माननीय उच्चन्यायालय ने लार्ड विलियम वैन्टिक काल में याचिका स्वीकार की और सतीदाह प्रथा पर रोक लगाने का आदेश प्रसारित किया।

यहाँ पर मैं एक और रहस्य की बात आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इस अवस्था में विधवा नारी को 'हींग' जिसे 'गन्धी' भी कहते हैं, २ तोला अर्थात् २०—२५ ग्राम को पानी में घोल

कर पिला देते हैं, जिसे वह विधवा नारी उसे अनिच्छा से भी पीना स्वीकार कर पी लेती है। क्यों? क्योंकि वह जानती है और सर्वत्र देख चुकी है कि जो विधवा हो जाती है उसका किस प्रकार घर, बाहर सब जगह, यहीं तक ही नहीं मांगलिक कार्यों में भी उसका वहाँ उपस्थित होना अशुभ सूचक माना जाने लगा था। इस तिरस्कार को वह सहन नहीं कर पाती, इसी नाते से हींग का पानी पी लेती है। जिसका परिणाम यह होता है कि उसके सारे शरीर में अग्नि भड़क उठती है और वह चिता की आग को देखकर उसी ओर को दौड़ती है और आग में कूद कर अपने आपको आहुत कर देती है। इस घृणित कार्य के ऊपर धूर्त लोग पतिव्रत धर्म पालन की चदरियाँ डाल कर उसे ढ़कना चाहते हैं।

मैक्समूलर ने भारत मन्त्री 'ड्यूक् आफ आर्गायल' को १६ दिसम्बर १८६८ के एक पत्र में लिखा—

"भारत के प्राचीन धर्म का नाश तो अब निश्चित है और यदि ईसाइयत आकर उसका स्थान न ग्रहण करे तो यह किसका दोष होगा?"

सन् १८६८ में अपनी पत्नी के नाम एक पत्र लिखते हुए प्रो० मैक्समूलर ने लिखा—"मुझे आशा है कि मैं उस काम को (वेदों का सम्पादनादि) पूरा कर दूँगा और मुझे निश्चय है कि यद्यपि मैं उसे देखने के लिये जीवित न रहूँगा तो भी मेरा ऋग्वेद का यह संस्करण और वेदों का अनुवाद भारत के भाग्य और लाखों भारतीयों के आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालने वाला होगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है और मूल को दिखा देना, उससे पिछले तीन हजार वर्षों में जो कुछ निकला है उसको मूल सहित उखाड़ देने का सबसे उत्तम प्रकार है।"

अर्थात् मैक्समूलर के द्वारा सम्पादित ऋग्वेद आदि ग्रन्थों के अनुवाद को पढ़कर भारत में पिछले तीन हजार वर्ष में जो वैदिक साहित्य तथा वैदिक धर्म का विकास हुआ है वह सब वेदों सहित नष्ट हो जायगा। दिवा स्वप्न की भाँति मैक्समूलर की इस विचार धारा को उखाड़ फैंका, गुरुदेव दयानन्द जी महाराज के अवतरण ने।

कुछ काल के पश्चात् पादरी पिटर्सन ने भी मैक्समूलर की तरह एक प्रयत्न किया। पिटर्सन ने संस्कृत के लालची विद्वानों से

ईसा की प्रशंसा में संस्कृत भाषा में छन्द तैयार कराये। इन सभी को एकत्रित करके पादरी पिटर्सन ने एक पुस्तक तैयार की, उसका नाम रखा 'यजुर्वेद'। पादरी अपने इस यजुर्वेद का प्रचार करने लगा। वह घूमता—घूमता दक्षिण पहुँचा। वहाँ पर उसने कहा यजुर्वेद में प्रभु ईसा की चर्चा है, यह कहकर उसने अपना यजुर्वेद कई योग्य पढ़े लिखे व्यक्तियों को दिखाया। उन लोगों ने अपने यहाँ के घनान्त वेद पाठी विद्वानों से चर्चा की। इसे सुनकर कई घनान्त वेद पाठी विद्वान पादरी पिटर्सन से मिले और उनके हस्त लिखित यजुर्वेद को देखा और उसे जटा पाठ आदि क्रम से पढ़ा, कहीं कोई तालमेल नहीं बैठ रहा था तब उन्होंने पादरी पिटर्सन को चुनौती दी और कहा तुम इस नकली यजुर्वेद का प्रचार बन्द करो नहीं तो हम तुमको न्यायालय में ले जाकर इस धोखा देई के लिये अपराधी घोषित करायेंगे। इस प्रकार इस नकली यजुर्वेद से मुक्ति मिली और यह नकली यजुर्वेद आज भी इंग्लैण्ड के संग्राहलय में सुरक्षित रखा है। धन के लालच में आज भी अनेक भारतीय विद्वान् देव भाषा संस्कृत का दुरुपयोग कर भारतीय संस्कृति को तिरस्कृत कराने के लिये ईसा आदि की भक्ति के अर्न्तगत लेख लिख रहे हैं। जिससे वे अगामी काल खण्ड में उन लेखों का प्रयोग कर राक्षसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर, धर्मच्युत कर, जनमानस को दिग्भ्रमित किया जा सके।

आज तक घनान्त वेद पाठी विद्वानों ने इन्हीं पाठों के द्वारा चारों वेदों की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखा था, रखा है और प्राण—पण से पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखेंगे। धन्य हैं हमारे महर्षि और उनकी दूरदर्शिता।

प्रारम्भ के संहिता, पद और क्रम पाठों के ज्ञान का होना अनिवार्य है। साथ में विकृति पाठों में 'जटा पाठ' का जानना भी अति आवश्यक है।

१— जो वेद पाठी जटा धारी है, उसका यह स्वरूप सिद्ध करता है कि वह घनान्त वेद पाठी 'जटा पाठ' का पूर्ण अभ्यासी है।

२— जो घनान्त वेद पाठी कर में अथवा गले में माला धारण करता है, चाहे वह माला पुष्प की हों या मनके ही, यह प्रतिभा चिन्ह 'माला पाठ' घनान्त वेद पाठी का संकेत देता है।

३— जिस वेद पाठी के शीश पर शिखा है तो यह आकृति

चिन्ह 'शिखा पाठ' के पारंगत घनान्त वेद पाठी का है।

४— जिस वेद पाठी विद्वान् के ललाट पर चन्दन की रेखायें लगी होती हैं तो वह इस चिन्ह से विभूशित 'रेखा पाठ' का घनान्त वेद पाठी होता है।

५— जिस वेद पाठी पण्डित के हाथ में ध्वज होता है तो यह आकृति चिन्ह इस बात का संकेत देता है कि यह विद्वान् घनान्त वेद पाठी 'ध्वज़ पाठ' को धारण किये हुए है।

६— जो वेद पाठी अपने कर में सदैव दण्ड को धारण करे रहता है तो वह घनान्त वेद पाठी 'दण्डपाठ' के अभ्यास से विभूपित होता है।

७— जो घनान्त पण्डित पद यात्रा न करके केवल रथ यात्री ही होता है तो वह निश्चय रूप से घनान्त वेद पाठी 'रथ पाठ' की प्रवीणता को अपने पास रखता है।

८— जो घनान्त वेद पाठी अपनी ही कुटिया में निश्चल भाव से स्कम्भ बनकर स्थिर चित्त होकर घन रूप में विराजमान है तो यह प्रकार उस घनान्त वेद पाठी का है जो 'घन पाठ' का सर्व ज्ञाता होता है।

आज के युग में यह सारे चिन्ह केवल कल्पना मात्र ही रह गये है। आडम्बरी साधुओं ने इन्हें धारण कर इनके सत्य स्वरूप को ही नष्ट—भ्रष्ट कर दिया है।

वेद चर्चन विधि

चारो वेदों के स—स्वर पढ़ने की रीति को वेद चर्चन विधि कहते हैं। याज्ञवल्क्य शिक्षा, यजुः प्रातिशाख्य, चरण व्यूह आदि ग्रन्थों में विस्तार से वेदों के पढ़ने की रीति का वर्णन है, उन्हीं ग्रन्थों के भाव को लेकर संक्षेप से चारों वेदों के संहिता आदि पाठ करने की रीति लिखी जाती है।

वेद चार एवं अपौरुषेय

वेद पवित्र ईश्वरीय ज्ञान की अनुपम निरू है, संसार सागर को सुगमता से तरने के लिये सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में

उत्पन्न अत्यन्त पवित्रतम अन्तःकरण वाले एवं परीक्षा में पूर्ण अंक प्राप्त कर मोक्ष मार्ग की ओर गमन करने वाले अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों के द्वारा ऋग्, यजुः, साम, अथर्व इन चारों वेदों का ज्ञान स्वयंभू परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में दिया था। जो ज्ञान अपौरुषेय और ईश्वर प्रदत्त हैं। वेदों की संख्या के सम्बन्ध में स्वयं ऋग्वेद और अथर्ववेद में आया है—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।
ऋग्वेद १०। ९०। ९

उस सर्व प्रणेता यजनीय परमेश्वर से ऋचायें (ऋग्वेद) सामवेद प्रकट हुए उसी से छन्द (अथर्ववेद) उत्पन्न हुआ तथा उसी सर्व व्यापक परमेश्वर से यजुः (यजुर्वेद) उत्पन्न हुआ।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।।
अथर्ववेद १०। ७। २०

जिससे ऋग्वेद की ऋचायें प्रकट हुईं और जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, सामवेद जिसके लोम हैं और अथर्ववेद जो कि जीवन के रस के समान है वह जिसका मुख है उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

इस प्रकार वेद की केवल चार पुस्तकें ही हैं और इनमें अपौरुषेय ज्ञान का वर्णन है जिसके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपनी जीवन यात्रा में धर्म—अर्थ—काम—मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। इसे और विस्तार से देखें ईश—महिमा पुस्तक में।

चारो वेद मन्त्र गणना

ऋग्वेद १= इसमें ८ अष्टक, ६४ अध्याय, २००३ वर्ग हैं। २=१० मण्डल, १०१७ सूक्त हैं। कुल मन्त्र १०५५२ हैं।

यजुर्वेद = में ४० अध्याय तथा १९७५ मन्त्र हैं।

सामवेद = में पूर्वार्चिक, महानाम्न्यार्चिक, उत्तरार्चिक ये ३ आर्चिक, ८७ साम, २९ अध्याय और १८७५ मन्त्र हैं।

अथर्ववेद = में २० काण्ड, १११ अनुवाक, ७३३ वर्ग और ५९७७ मन्त्र हैं।

चारों वेदों का मन्त्र योग — २०३७९ है।

ऋषि-देवता-स्वरादि

अर्थविज्ञाय एतानि योऽधीते तस्यवीर्यवद्।

शु० य० सर्वानुक्रमणिका

जो ऋषि, छन्द, देवता और स्वर को अच्छी प्रकार जान कर वेद का पाठ करते हैं, उनका वेदपाठ पराक्रम वाला होता है अर्थात् जिस प्रयोजन से पाठ किया जाता है उसके करने में समर्थ होता है अर्थात् पूर्णफल के देने वाला होता है।

यहाँ पर हम प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ आये ऋषि, देवता, छन्द और स्वरों पर प्रकाश डालते हैं।

ऋषि

ऋषिर्दर्शनात्। दर्शनं ज्ञानम्।।

वेद ईश्वर का ज्ञान होने से चारों वेदों का परमात्मा ऋषि है। उस ज्ञान का साक्षात्कार करने से प्रत्येक वेद का एक—एक ऋषि हुआ जैसे—ऋग्वेद का ऋषि 'अग्नि', यजुर्वेद का ऋषि 'वायु', सामवेद का ऋषि 'आदित्य' और अथर्ववेद का ऋषि 'अंगिरा' है। समय समय पर जिस जिस ऋषि ने समाधिस्थ होकर मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जाना वे 'ऋषि' कहलाये।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।

निरुक्त

चारो वेदों के मन्त्र द्रष्टा ऋषि—प्रजापति, परमेश्वर, विश्वामित्र, मधुच्छन्दा, कश्यप, वशिष्ठ आदि ४५७ ऋषि हैं जिनके नाम 'अनुक्रमणिका बृहद्देवता' आदि ग्रन्थों में दिये हैं। वर्तमान समय के युग में परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज चतुर्वेद मन्त्र द्रष्टा एवं वेदोंद्धारक ऋषि बने।

देवता

येनोच्यते सा देवता। प्रतिपाद्य विषयो वा देवता।।

वेदों में मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को देवता कहते हैं अर्थात् वेद के जिस मन्त्र में जिस विषय का वर्णन हो वही विषय उस मन्त्र का देवता कहलांता है। चारो वेदों का ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान यह चार मुख्य विषय होते हुए भी ४७६ विषयों का वर्णन है। इस विषय पर जगत् गुरु युग प्रवर्तक वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने एक ग्रन्थ की रचना की उसका नाम है ''चतुर्वेद मन्त्र विषय सूची'' जिसे पं० विश्वश्रवा जी के प्रयत्नों से परोपकारणी सभा अजमेर ने प्रकाशित किया। वेदों में भिन्न भिन्न विषयों का वर्णन होने पर भी यह चारो वेद उसी प्रभु की महिमा को अंग उपांग के द्वारा गाते हैं।

उपनिषद् साहित्य में आता है—

सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति

छन्द

कविर्मनीषी

यजुर्वेद ४०। ८ में परमेश्वर को ''कविर्मनीषी'' कहा है अर्थात् वह कवि मनीषी है, इसलिये उसका ज्ञान भी काव्य में है 'छन्द' में है। वेद का प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी छन्द में बद्ध है। मुख्य छन्द सात हैं। गायत्री छन्द २४ अक्षरों से युक्त होता है, उष्णिक् २८ अक्षर, अनुष्टुप् ३२ अक्षर, बृहती ३६ अक्षर, पंक्ति ४० अक्षर, त्रिष्टुप् ४४ अक्षर, जगती ४८ अक्षरों से युक्त होते हैं। यह छन्द १०४ अक्षरों तक के होते हैं, हमने इसकी चर्चा 'वेदांग परिचय' पुस्तक में की है।

स्वर

संगीत में स्वर सात होते हैं। संस्कृत एवं देवनागरी लिपि वर्णमाला में स्वर १२ होते हैं, वेद मन्त्रों के पाठोच्चारण में स्वर तीन हैं, जिनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते हैं। हम इसकी चर्चा आगे करेंगे। यहाँ पर 'स्वर' का अभिप्राय है वेद के मन्त्र पाठ की

गति का। चारों वेदों के मन्त्रोच्चारण की गति पृथक्–पृथक् है, ऋग्वेद का उच्चारण–—दो मात्राओं में अर्थात् कुछ शीघ्रता के स्वर में, यजुर्वेद का उच्चारण——–तीन मात्राओं में अर्थात् लम्बे स्वर में, सामवेद का उच्चारण–—–—चार मात्राओं में अर्थात् अधिक लम्बे स्वर में, अथर्ववेद का उच्चारण–—दो मात्राओं में अर्थात् ऋग्वेद के उच्चारण स्वर में होता है।

स्वर लक्षण

उच्चैरुदात्तः।

आयामो दारुण्यमणुता उच्चैः कराणि शब्दस्य।

जिन स्वरों का उच्चारण शरीर तथा गले को संकुचित कर उक्त स्थानों से कड़ी ध्वनि की जाय, उसे 'उदात्त' कहते हैं। जैसे– 'अग्ना३इ'।

नीचैरनुदात्तः।

मार्दवमुरु ह्रस्वता नीचैः कराणि शब्दस्य।

शरीर तथा गले को ढ़ीला कर उक्त स्थानों से गम्भीर, मधुर ध्वनि से स्वरों का उच्चारण करना 'अनुदात्त' कहलाता है। जैसे – 'आर्षेय ऋषीणाम्'।

समाहारः स्वरितः।

उभयवान् वा स्वरितः।

जिसके उच्चारण में दोनों वर्णों के धर्म मिले हों वह 'स्वरित' है।

धान्यमसि वैष्णवौस्य।

उदात्त एकार और ओकार से परे जहाँ अनुदात्त आकार का पूर्णरूप हुआ हो वह 'अभिनिहित' स्वर कहलाता है। जैसे– 'ते अप्सराम्' 'तेऽप्सराम्'। 'वेदःअसि' 'वेदोऽसि'।

उदात्त इकार और उकार को जहाँ यणादेश अर्थात् 'य' और 'व' आदेश हुआ हो, वह 'क्षैप्र' स्वर है। जैसे– त्रि+अम्बकम=त्र्यम्बकम् यजामहे। नु+इन्द्र योजान्विन्द्रते हरि।

जहाँ उदात्त इकार और उकार के साथ अनुदात्त इकार और उकार का दीर्घादेश हुआ हो उसे 'प्रश्लिष्ट' स्वर कहते हैं। अभि+इन्धताम्=अभीन्धताम्। सुचि+इव=सुचीव घृतम्।

जहाँ पूर्व स्वर उदात्त हो और उससे व्यञ्जन युक्त स्वर परे हो वह 'तैरोव्यञ्जन' स्वर है। जैसे—इडे रन्ते हव्ये काम्ये।

जहाँ दो स्वरों की बीच के अन्तर से जिस स्वर की ज्ञप्ति हो वह 'पादवृत' स्वर है। जैसे — ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य।

उदात्तादि और उदात्तान्त से परे अनुदात्तादि का अवग्रह हो (अर्ध मात्रा विराम को अवग्रह कहते हैं) तो वह 'भाव्य' स्वर कहलाता है।

जैसे — तनूनप्त्र इति तनूनप्त्रे।

उदात्त स्वर पूर्व में अवग्रह युक्त हो वह 'तैरोविराम' स्वर है। जैसे — गोपताविति गोपतौ।

एक पद अनुदात्त पूर्व यकार और वकार के साथ 'जात्य' स्वर होता है। कन्याइव। धान्यमसि।

यह उपरोक्त ऋग्वेदादि चारो वेदों के सामान्य स्वर कहे जाते हैं।

अंगुलियों के नाम

१— अंगुष्ठ, २ — तर्जनी, ३ — मध्यमा,
४ — अनामिका, ५— कनिष्ठिका।

ऋग्वेद स्वर चिन्ह और स्वर संकेत

ऋग्वेद के पाठ में स्वर का संकेत शीश से किया जाता है। उदात्त में शीश ऊपर को उठाते हैं, अनुदात्त में शीश को नीचे झुकाते हैं और स्वरित में शीश मध्य में ही रहता है। ऋग्वेद के मन्त्रों में चिन्ह 'स्वरित' ऊपर खड़ी रेखा (।) अनुदात्त नीचे पड़ी रेखा (—) और उदात्त रेखा हीन होता है। कई ऋग्वेद पाठी स्वरों का संकेत हाथ से ही करते हैं। हाथ का भी क्रम शीश के अनुसार उदात्त में ऊपर, अनुदात्त में नीचे और स्वरित में मध्य में रहता है।

यजुर्वेद स्वर चिन्ह और स्वर संकेत

• हस्तेन ते। ऋ०प्रा० १। १। २१

यजुर्वेद के स्वरों का संकेत हाथ द्वारा होता है। वेद पाठ के

समय दाहिने हाथ की मुक्त मुष्ठि अर्थात् मुट्ठी खुला हुआ हाथ परस्पर सब अंगुलियों को मिला कर हाथ बीच में सीने के पास रखें, हथेली ऊपर पृष्ठ भाग नीचे हो। पाठ के समय सीधे बैठ कर जहाँ 'उदात्त' हो वहाँ हाथ ऊपर शीश तक ले जाना होता है, 'अनुदात्त' में हाथ नीचे नाभी तक आता है और 'स्वरित' में हाथ मध्य में सीने के पास ही रहता है। जहाँ उदात्त और अनुदात्त दो ही स्वर हों वहाँ दाहिना हाथ बीच से उदात्त होने पर बायीं ओर को जायगा और अनुदात्त होने पर दाहिनी ओर जायगा। ह्रस्व या दीर्घ ७ (ग्वंग) में दिशासूचक अंगुली की भाँति समागत स्वर के साथ संकेत किया जाता है। पादान्त हलन्त 'त्' में तर्जनी और अंगुठ दोनों को मिला कर कुण्डल की आकृति करनी पड़ती है। पादान्त 'ट्' में तर्जनी अंगुली अंगुष्ठ के मध्य में रहती है। जात्यादि अर्थात् जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट स्वर जहाँ अनुदात्त के साथ आवे तो वहाँ हाथ को यज्ञ—हवि आहुति के प्रकार टेढ़ा करना पड़ता है। जहाँ उदात्त परे वहाँ अनुदात्त परक जात्यादि स्वर में अनुदात्त के अनुसार नीचे करके उस जात्यादि में जरा और नीचे करना पड़ता है जिस प्रकार ऋक् प्रातिशाख्य में कण्व ऋषि का मत प्रदर्शित है।

अनुदात्त चेत्पूर्व तिर्यङ्निहत्य काण्वस्य।

ऋ० प्रा० १। १२३

न्निहत्य प्राणि हन्यते उदात्ते।

ऋ० प्रा० १। १२४

स्वरित के आगे विसर्ग को, मध्य की दो अंगुलियाँ मध्यमा और अनामिका को मोड़कर संकेत किया जाता है, उदात्त अनुदात्त के विसर्ग को मार्ग दर्शक अंगुली की भाँति ही संकेत करने का नियम है। यजुर्वेद में अनुदात्त के लिये नीचे पड़ी रेखा (—) स्वरित के लिये खड़ी रेखा (।) और उदात्त रेखा हीन होता है। जात्यादि स्वर में जहाँ यज्ञ हवि आहुति के प्रकार का हाथ करना पड़ता है उसका चिन्ह (ﾛ) ऐसा होता है। जात्यादि को विशेष नीचे हाथ कर संकेत करते हैं, उसके लिये चिन्ह (IC) ऐसा होता है।

सामवेद स्वर चिन्ह और स्वर संकेत

सामवेद के स्वर संकेत अंगुलियों से होते हैं। उदात्तादि के

लिये संकेत रूप में अंक दिये गये हैं। उदात्त के लिये (१) एक का अंक, अनुदात्त के लिये (२) दो का अंक और स्वरित के लिये (३) तीन का अंक होता है। उदात्त के लिये एक अंक पर खुला हुआ सीधा हाथ, अनुदात्त के लिये दो अंक पर अंगूठा तर्जनी अंगुली के मध्य पोर पर और स्वरित के लिये तीन अंक पर मध्यमा अंगुली के मध्य पोर पर अंगूठा रखा जाता है। कहीं कहीं पर दो अंक के साथ (उ) और तीन अंक के साथ (क) आता है। जहाँ पर '२' के साथ (उ) अंकित है उस स्थान पर अंगूठा तर्जनी अंगुली के मूल तक स्पर्श करती हुई अग्रभाग तक, पुनः तर्जनी स्पर्श करती हुई अंगुठ मूल में चली जाती है और '३' के साथ (क) होने पर अंगूठा मध्यमा अंगुली के मूल से स्पर्श करता हुआ अग्रभाग में जाकर समाप्त हो जाता है। मन्त्र के ऊपर (र) अक्षर भी आता है वहाँ वाम हाथ की अंगुलियों को क्रम से सबको मोड़ कर मुष्टिका रूप में करके पुनः क्रमशः खोलना पड़ता है, बार—बार अंगुलियों का खोलना मोड़ना (र) के साथ जारी रहता है। यह तीन स्वर संहिता पाठ में आते हैं। यही सामवेद संहिता पाठ के स्वर हैं।

अथर्ववेद स्वर चिन्ह और स्वर संकेत

अथर्ववेद के पाठ में स्वर का संकेत और स्वर चिन्ह ऋग्वेद के अनुसार ही होता है, जिसे हमने पूर्व अंकित किया है, उसी के अनुसार अथर्ववेद स्वर चिन्ह और स्वर संकेत जाने।

इस प्रकार चारों वेदों के स्वर चिन्ह और स्वर संकेत होते हैं।

पाठों की विवेचना

संहिता पाठ के अतिरिक्त चारो वेदों के कई पाठ और भी होते हैं। संहिता पाठ के पश्चात् पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ और घनपाठ। इन पाठों में संहितापाठ के सब नियम प्रचलित नहीं होते। इन विकृति पाठों का बहुत विस्तार है, इनका यथा योग्य विधिपूर्वक ज्ञान तो किसी घनान्त वेद पाठी विद्वान् की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। हम अपने तुच्छ प्रयासों से प्राप्त इन पाठों को लक्षण सहित प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

१. संहितापाठ

परः सन्निकर्षः संहिता

अष्टाध्यायी १। ४। १०९ पाणिनि

ओषधयः संवदन्तेसोमेन सह राज्ञा।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि।।

ऋग्वेद १०। ९७। २२

२. पदपाठ

पदविच्छेदोऽसंहितः।

मन्त्र के प्रत्येक पद को पृथक्–पृथक् पढ़ने को पदपाठ कहते हैं।

ओषधयः। सं। वदन्ते। सोमेन। सह। राज्ञा।
१ २ ३ ४ ५ ६

यस्मै। कृणोति। ब्राह्मणः। तं। राजन्। पारयामसि।।
७ ८ ९ १० ११ १२

३. क्रमपाठ

क्रमेण पदद्वयस्य पाठः ।

क्रमपाठो 'योगरूढ़ा संहिता' इत्युध्यते ।

'क्रमः समृतिप्रयोजनः'

प्रा०सू० ४। १८ कात्यायनः

दो पदों को मिलाकर पढ़ना, पूर्व—पूर्व एक—एक पद को छोड़ते जाना, उत्तरोत्तर एक—एक पद मिलाकर पढ़ते जाने को क्रम—क्रमपाठ कहते हैं।

ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।
१ २ २ ३ ३ ४

सोमेन सह । सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ।।
४ ५ ५ ६ ६ ६

यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः ।
७ ८ ८ ९

ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन्। पारयामसि ।
९ १० १० ११ ११ १२

पारयामसीति पारयामसि ।।
१२ १२

पञ्चसन्धि

अनुक्रमश्चोत्क्रमश्च व्युत्क्रमोऽभिक्रमस्तथा।
संक्रमश्चेति पञ्चैतेजटायां कथिताः क्रमाः।।

प्रथम सन्धि - क्रमः — १+२, २+३

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन ।
१ २ २ ३ ३ ४

सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।।
४ ५ ५ ६ ६ ६

द्वितीय सन्धि - उत्क्रम — २+२, ३+३

सं सं। वदन्ते वदन्ते। सोमेन सोमेन।
२ २ ३ ३ ४ ४

सह सह। राज्ञा राज्ञा।।
५ ५ ६ ६

तृतीय सन्धि - व्युत्क्रमः— २+१, ३+२

समोषध्यः। वदन्ते सं। सोमेन वदन्ते।
२ १ ३ २ ४ ३

सह सोमेन। राज्ञा सह।।
५ ४ ६ ५

चतुर्थ सन्धि - अभिक्रमः — १+१, २+२

ओषधयः ओषधयः। सं सं। वदन्ते वदन्ते।

१ १ २ २ ३ ३

सोमेन सोमेन। सह सह॥

४ ४ ५ ५

पंचम सन्धि - संक्रमः — १+२, २+३

ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

१ २ २ ३ ३ ४

सोमेन सह। सह राज्ञा ॥

४ ५ ५ ६

पञ्च सन्धि पाठ

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

१— तत्सवितुः। सवितुर्वरेण्यं। वरेण्यं भर्गः।

भर्गो देवस्य । देवस्य धीमहि ।

धीमहीति धीमहि ॥

२— सवितुस्सवितुः। वरेण्यं वरेण्यं। भर्गो भर्गः।

देवस्य देवस्य। धीमहि धीमहि ॥

३— सवितुस्तत्। वरेण्यं सवितुः। भर्गो वरेण्यं।

देवस्य भर्गः। धीमहि देवस्य।

४— तत्तत्। सवितुस्सवितुः। वरेण्यं वरेण्यं।

भर्गो भर्गः। देवस्य देवस्य।।

५— तत्सवितुः। सवितुर्वरेण्यं। वरेण्यं भर्गः।

भर्गो देवस्य। देवस्य धीमहि।।

विकृति लक्षण

शैशिरीये समास्राये व्याळिनैव महर्षिणा।
जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नातिविस्तरम्।। १।।
जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः।।२।।

यहाँ अष्ट विकृति का पाठ विकार अर्थ नहीं है, किन्तु
विविधाकृतिर्विकृतिर्विशेषाकृतिर्वा।
अर्थात् वेद मन्त्रों के क्रम पाठ को आठ प्रकार से रचना कर बोलने का नाम अष्ट विकृति है।

जटा लक्षण

ब्रूयात्क्रम विपर्यासं क्रममीदृग्विनिर्दिशेत्।
जटाख्यं विकृतिर्धीमान् विज्ञाय क्रम लक्षणम्।।

चरण व्यूह २

अनुलोम विलोमाभ्यां त्रिवांर हि पठेत् क्रमम्।
विलोमे पदवत्सं धिरनुलोमे यथा क्रमम्।।

चरण व्यूह ३

क्रमं यथोक्तं प्रब्रूयाद् व्युत्क्रमेण क्रमेण च।
सलक्षणं सर्व सन्धौ जटा सा प्रोच्यते बुधैः।।

ऋ०प्रा० ४। १

दो–दो पदों को मिलाकर पढ़ने का क्रम, उसी क्रम को अनुलोम (१–२) से, विलोम (२–१) से, पुनः अनुलोम (१–२) से, इस प्रकार तीन बार पढ़ने को जटा पाठ कहते हैं। अनुलोम में यथा क्रम से संधि होती है और विलोम में पद की प्रकर संधि होती है।

स्वा पूर्वाश पदद्वयं स्वागर्भेत्रि चतुष्क्रमे।
पुनरुक्त मसंदेहार्थं जटा त्वं न चार्हति।।

ऋ०प्रा० ४। २

'सु' 'आ' यह दोनों पद तीन बार या चार बार के क्रम में मध्य में पड़ता हो तो वहाँ जटा पाठ नहीं होता। जटा में पाँच प्रकार का क्रम होता है। उसे पञ्चसंधि पाठ भी कहते हैं, उसे हमने पूर्व अंकित किया है।

जटापाठ में अपृक्त 'उ' को स्पर्श वर्णों से परे रहने पर 'व' हो जाता है।

जैसे :— उदुत्य न्त्यम्बुदुदुत्यम् (मय उञो वो वा)

जटा के व्युत्क्रम पाठ में ओकारान्त निपात को प्रगृह्य हो जाने से संधि नहीं होती।

जैसे :— उप्रोते त उपो उपोते। अथो ये येऽथोऽअथो ये।

इस प्रकार की अन्य संधियाँ भी जटापाठ तथा अन्य विकृति पाठों में जाननी चाहिये।

१. जटापाठ

ओषधयुस् सं, समोषधयु, ओषधयुस् सम्।।
१ २ २ १ १ २

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते।।
२ ३ ३ २ २ ३

वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन।।
३ ४ ४ ३ ३ ४

सोमेन सुह, सुह सोमेन, सोमेन सुह।।
४ ५ ५ ४ ४ ५

सुह राज्ञा, राज्ञा सुह, सुह राज्ञा।।
५ ६ ६ ५ ५ ६

राज्ञेति राज्ञा।।
६ ६

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति।।
७ ८ ८ ७ ७ ८

कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणः।।
८ ९ ९ ८ ८ ९

ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं।।
९ १० १० ९ ९ १०

तं राजन्, राजस्तं, तं राजन्।।
१० ११ ११ १० १० ११

राजन्पारयामसि, पारयामसि राजन्। राजन्पारयामसि।।
११ १२ १२ ११ ११ १२

पारयामसीति पारयामसि
१२ १२

माला लक्षण

मालाया द्वौ भेदौ पुष्पमाला—क्रममाला चेति।
माला मालेव पुष्णणां पदानां ग्रन्थिनी हिं सा।
आवर्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रंम व्युत्क्रम संक्रम।।

झ० प्रा० ३। ८

जैसी गुंथी फूलों की माला एक दूसरे से सम्बन्धित रहती है उसी प्रकार पदों की सम्बन्ध कराने वाली जो विकृति है उसी को मालापाठ कहते हैं। मालापाठ का एक भेद क्रम मालापाठ भी होता है।

ब्रूयात् क्रम विपर्यासा वद्धर्च्चस्यादितोऽन्ततः।
अन्तं चादिन्न येदेवं क्रम मालेतिगीयते।।

ऋ०प्रा० ४। ९

आधी—आधी ऋचा को लेकर आदि क्रम से पढ़ते हुए अन्त को प्राप्त करे और अन्त से उलटा पढ़ते हुए आदि तक आवे, इस प्रकार पाठ को क्रम माला पाठ कहते हैं।

२. मालापाठ

१. क्रममाला —

ओषधयः सं। राज्ञेति राज्ञा।। सं वदन्ते। राज्ञा सह।।
१ २ ६ ६ २ ३ ६ ५

वदन्ते सोमेन। सह सोमेन।। सोमेन सह। सोमेन वदन्ते।।
३ ४ ५ ४ ४ ५ ४ ३

सह राज्ञा। वदन्ते सं।। राज्ञेति राज्ञा। समोषधयः।।
५ ६ ३ २ ६ ६ २ १

यस्मै कृणोति। पारयामसीति। पारयामसी।।
७ ८ १२ १२

कृणोति ब्राह्मणः। पारयामसि राजन्।।
८ ९ १२ ११

ब्राह्मणंस्तं। राजँस्तं।। तं राजन्। तं ब्राह्मणः।।
९ १० ११ १० १० ११ १० ९

राजन्पारयामसि। ब्राह्मणः कृणोति।।
११ १२ ९ ८

पारयामसीति पारयामसि। कृणोति यस्मै।।
१२ १२ ८ ७

आदितोऽन्ततः	=	अन्तं चादिंनयते
१ — ओषधयः सं	—	राज्ञेति राज्ञा — ६
२ — सं वदन्ते	—	राज्ञा सह — ५
३ — वदन्ते सोमेन	—	सह सोमेन — ४
४ — सोमेन सह	—	सोमेन वदन्ते — ३
५ — सह राज्ञा	—	वदन्ते सं — २
६ — राज्ञेति राज्ञा	—	समोषधयः — १
७ — यस्मैकृणोति	—	पारयामसीति पारयामसि — १२
८ — कृणोति ब्राह्मणः	—	पारयामसि राजन् — ११
९ — ब्राह्मणस् तं	—	राजँस्तं — १०
१०— तं राजन्	—	तं ब्राह्मणं — ९
११— राजन् पारयामसि	—	ब्राह्मणः कृणोति — ८
१२— पारयामसीति पारयामसि	—	कृणोति यस्मै — ७

पुष्पमाला

१. क्रमः पाठ–

ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।

यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः।

ब्राह्मणस्तं। तं राजन्।

राजन्पारयामसि। पारयामसीति पारयामसि।

२. व्युत्क्रमः पाठ–

समोषधयः वदन्ते सं। सोमेन वदन्ते।

सह सोमेन । राज्ञा सह। कृणोति यस्मै।

ब्राह्मणः कृणोति। तं ब्राह्मणः।

राजँस्त। पारयामसि राजन्।

३. संक्रमः पाठ –

ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

सोमेन सह। सह राज्ञा। यस्मै कृणोति।

कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं।

तं राजन्। राजन्पारयामसि।

इस मंत्र का मालापाठ

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।

अग्नये जातवेदसे।।

यजुर्वेद ३।२

सु समिद्धाय शोचिषे। शोचिषे सुसमिद्धाय।।

सुसमिद्धाय शोचिषे। सुसमिद्धायेति। सुसमिद्धाय।।

शोचिषे घृतं। घृतं शोचिषे। शोचिषेघृतम्।।

तीव्रं जुहोतन। जुहोतन तीव्रं। तीव्रं जुहोतन।

जुहोतनेति जुहोतन।।

अग्नये जातवेदसे। जातवेदस अग्नये।

अग्नये जातवेदसे।

जातवेदस इति जातवेदस इति जातवेदसे।।

शिखा लक्षण

पदोत्तरां जटामेव शिखामार्याः प्रचक्षते।

ऋ०प्रा० ४।९

पूर्वोक्त जटा पाठ को ही अन्त में एक पद अधिक मिलाकर पढ़ने को शिखा पाठ कहते हैं।

३. शिखा पाठ

ओषधयः सं, समोषधय, ओषधयः सं, — वदन्ते।
१ २ २ १ १ २ ३

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते, — सोमेन।
२ ३ ३ २ २ ३ ४

वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन, — सह।
३ ४ ४ ३ ३ ४ ५

सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह — राज्ञा।
४ ५ ५ ४ ४ ५ ६

सह राज्ञा, राज्ञा सह, सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।
५ ६ ६ ५ ५ ६ ६ ६

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति, — ब्राह्मणः।
७ ८ ८ ७ ७ ८ ९

कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणम् — तम।
८ ९ ९ ८ ८ ९ १०

ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं, — राजन्।
९ १० १० ९ ९ १० ११

तं राजन्, राजँस्तं, तं राजन् — पारयामसि।
१० ११ ११ १० १० ११ १२

राजन्पारयामसि, पारयामसि राजन्, राजन् पारयामसि।
११ १२ १२ ११ ११ १२

पारयामसीतिं पारयामसि
१२ १२

इस मन्त्र का शिखा पाठ

अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपानती।

व्यख्यन्महिषो दिवम्।।

यजुर्वेद ३। ७

अन्तश्चरति चर त्यन्तरन्तश्चरति रोचना।

अन्तरित्यन्तः। चरति रोचना रोचना चरति

चरतिरोचनाऽस्य अस्य

प्राणात्प्राणादस्यास्य प्राणादपानति।।

व्यख्यद ख्यद् विव्यन्महिषः। अख्यन्महिषो महिषोऽख्यद

ख्यन्महिषो दिवम्। महिषो दिवम् दिवम् महिषो दिवम्।

दिवमिति दिवम्।।

रेखा लक्षण

क्रमाद् द्वि त्रि चतुः पंच पद क्रममुदाहरेत्।
पृथक पृथग विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्। ।

ऋ०प्रा० ४। १०

यथा क्रम दो तीन, चार और पाँच पदों को मिलाकर क्रम विधि से पढ़े, पुनः उतने पदों को उलटा पढ़कर फिर क्रमपाठ में पढ़े, उसको रेखा पाठ कहते हैं।

४. रेखापाठ

पूर्वार्ध ऋचा

द्व पद = ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं।।

त्रय पद = सं वदन्ते सोमेन। सोमेन वदन्ते सं। सं वदन्ते।।

चतुष्य पद = वदन्तें सोमेन सह राज्ञा।

राज्ञा सह सोमेन वदन्ते। वदन्ते सोमेन।।

सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।।

उत्तरार्धं ऋचा

द्व पद = यस्मै कृणोति। कृणोति यस्मै। यसमै कृणोति।।

त्रय पद = कृणोति ब्राह्मणस्तं। तं ब्राह्मणः कृणोति।

कृणोति ब्राह्मण :।।

चतुष्य पद = ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि।

पारयामसि राजँस्तं ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं।।

तं राजन्। राजन् पारयामसि।

पारयामसीति पारयामसि।।

सम्पूर्ण ऋचा

द्व पद = ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सम्।।

त्रय पद = सं वदन्ते सोमेन। सोमेन वदन्ते सं। सं वदन्ते।।

चतुष्य पद = वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।

राज्ञा सह सोमेन वदन्ते। वदन्ते सोमेन।।

पंच पद = सोमेन सह राज्ञा यस्मै कृणोति।

कृणोति यस्मै राज्ञा सह सोमेन। सोमेन सह।।

षट पद = सह राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं।

तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै राज्ञा सह। सह राज्ञा।।

सप्त पद = राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि।

पारयामसि राजँस्तं ब्राह्मणः

कृणोति यस्मै राज्ञा। राज्ञा यस्मै।।

यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं। तं राजन्।

राजन् पारयामसि। पारयामसीति पारयामसि।

इस मन्त्र का रेखा पाठ

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।

मधु द्यौरस्तु नः पिता।।

यजुर्वेद १३। २८

द्व पद = मधु नक्तम्। नक्तम्मधु मधुनक्तम्।।

त्रय पद = नक्त मुतोषसः। उषस इति उषसउतनक्तम्।

नक्त मुत। उतोषसः।।

चतुष्य पद = उषसोमधुमत्पार्थिवं राजः ।

रजः पार्थिवं मधुमदुषसः। उषसोमधुयद्।

मधुमत्पार्थिवम्। मधु मदिति मधुयद्।

पार्थिवं रजः। रज इति रजः।।

पंच पद = मधुद्यरस्तु नः पिता। पितानोऽस्तुद्यौर्मधु।

मधुद्योः। द्यौरस्तु। अस्तु नः।

नः पिता। पितेति पिता।।

ध्वज लक्षण

ब्रूयादादेः क्रमं सम्य गन्तादुत्तारयेदिति।
वर्गे वा ऋचि वा यस्य पठनं स ध्वजः स्मृतः।।
ऋ०प्रा० ४। ११

वर्ग वा ऋचा में आदि से अन्त तक क्रम विधि से पाठ करे और उसी प्रकार अन्त से आदि तक। इस प्रकार पढ़ने को ध्वज पाठ कहते हैं।

७. ध्वजपाठ

आदि क्रम	अन्त क्रम
१— ओषधयः सं।	२— पारयामसीति पारयामसि।
३— सं वदन्ते।	४— राजन् पारयामसि।
५— वदन्ते सोमेन।	६— तं राजन्।
७— सोमेन सह।	८— ब्राह्मणस्तं।
९— सह राज्ञा।	१०— कृणोति ब्राह्मणः।
११— राज्ञेति राज्ञा।	१२— यस्मै कृणोति।
१३— यस्मै कृणोति।	१४— राज्ञेति राज्ञा।
१५— कृणोति ब्राह्मणः।	१६— सह राज्ञा।
१७— ब्राह्मस्तं।	१८— सोमेन सह।

१९— तं राजन्। २०— वदन्ते सोमेन।

२१— राजन् पारयामसि। २२— सं वदन्ते।

२३— पारयामसीति पारयामसि। २४— ओषधयः सं।

इस मन्त्र का ध्वजपाठ

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा।

यजुर्वेद ६।४

आदि क्रम	अन्त क्रम
विष्णोः कर्माणि।	सखेति सखा।।
कर्माणि पश्यत।	युज्यः सखा।।
पश्यत यतः।	इन्द्रस्य युज्यः।।
यतो व्रतानि।	पस्पश इति पस्पशे।।
व्रतानि पस्पशे।	व्रतानि पस्पशे।।
यतो व्रतानि।	पस्पश इति पस्पशे।।
पश्यत यतः।	इन्द्रस्य युज्यः।।
कर्माणि पश्यत।	युज्यः सखा।।
विष्णोः कर्माणि।	सखेति सखा।।

दण्ड लक्षण

क्रम मुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्चक्रममुत्तरम्।
अर्द्धर्चादेव मुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते।।

ऋ०प्रा० ४। १२

पहले क्रम विधि से पढ़ कर पुनः उसको उलट कर पढे फिर सीधे को क्रमपाठ विधि से पढकर पूर्वार्द्ध ऋचा समाप्त करे। इसी भाँति उत्तरार्द्ध ऋचा को भी पढ़े। इस विधि से पढने को दण्डपाठ कहते हैं।

६. दण्डपाठ

पूर्वार्द्ध-

२ = ओषधयः सं।। समोषधयः।

३ = ओषधयः सं। सं वदन्ते।। वदन्ते समोषधयः।

४ = ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।।

सोमेन वदन्ते समोषधयः।

५ = ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

सोमेन सह।। सह सोमेन वदन्ते समोषधयः।

६ = ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

सोमेन सह। सह राज्ञा।। राज्ञा सह।

सोमेन वदन्ते समोषधयः।

ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन।

सोमेन सह। सह राज्ञा।। राज्ञेति राज्ञा।

उत्तरार्ध-

२ = यस्मै कृणोति।। कृणोति यस्मै।

३ = यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः।।

ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

४ = यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः।

ब्राह्मणस्तं।। तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

५ = यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं।

तं राजन्।। राजँस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

६ = यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं।

तं राजन्। राजन् पारयामसि।।

पारयामसि राजँस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं।

तं राजन्। राजन् पारयामसि।

पारयामसीति पारयामसी।

इस मन्त्र का दण्ड पाठ

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँऽऋतंवृहद्।

अग्ने यक्षि स्वन्दमम्।।

यजुर्वेद ३३।३

यजानः नोयजः यजानः।। नोमित्रा वरुणा।

मित्रा वरुणा नोयज। यजानः नोमित्रा वरुणा।।

मित्रा वरुणा यज। यज मित्रो वरुणा नो यज।

यजानः। नोमित्रा वरुणा। मित्रा वरुणा यज।।

यजादेवान्। देवान् यज मित्रा वरुणा नोयज।

यजानः। नोमित्रा वरुणा।

मित्रा वरुणा यज।

यजा देवान्।। देवाँ ऋतम्।

ऋतं देवान् यज मित्रावरुणा नोयज।

यजानः नो मित्रावरुणा।

मित्रा वरुणा यज। यजादेवान्। देवाँ ऋतम्।।

ऋतं बृहद। बृहद्‌त देवान यज मित्रा वरुणा

नोयज । यजानः। नो मित्रा वरुणा। यजादेवान्।

देवाँ ऋतम्। ऋतं ब्रहद्। बृहदिति बृहद्।।

अग्ने यक्षि। यक्ष्यग्ने। अग्ने यक्षि।

यक्षि स्वम्। स्वंयक्ष्यग्ने। अग्ने यक्षि।

यक्षि स्वम्। स्वन्दमम्। यम स्वँ य्यक्ष्यग्ने।

अग्ने यक्षि। यक्षि स्वयम्। स्वन्दमम्।

दममिमि दमम्।।

रथ लक्षण

पादशोऽर्द्धर्चणेवापि सहोक्त्या दण्ड वद्रथः।।

ऋ०पा० ४। १२

पाद—पाद में अथवा ऋचा में दण्डपाठ के प्रकार क्रम और व्युत्क्रम (विपर्यास) को यदि साथ ही साथ पढ़ा जाये तो रक्ष पाठ बनतां है। पाद से तात्पर्य यहाँ छन्द अर्थात् मन्त्र के पाद (चरण) से है।

७. रथ पाठ

द्विचक्र रथ

	पूर्वाध	उत्तरार्ध
प्रथम एकपात्क्रम—	१. ओषध्य: सं।	यस्मै कृणोति।
व्युत्क्रम —	समोषधयः।	कृणोति यस्मै।
द्वितीय द्विपात्क्रम —	१. ओषधय: सं।	यस्मै कृणोति।
	२. सं वदन्ते।	कृणोति ब्राह्मण:।
व्युत्क्रम—	वदन्ते समोषधयः।	ब्राह्मण: कृणोति यस्मै।
तृतीय त्रिपात्क्रम —	१. ओषधय: सं।	यस्मै कृणोति।
	२. सं वदन्ते।	कृणोति ब्राह्मण:।

३. वदन्ते सोमेन। ब्राह्मणस्तं।

व्युत्क्रम — सोमेन वदन्ते समोषधयः।

तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

चतुर्थ चतुष्पात्क्रम —१. ओषधयः सं। यस्मै कृणोति।

२. सं वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

३. वदन्ते सोमेन। ब्राह्मणस्तं।

४. सोमेन सह। तं राजन्।

व्युत्क्रम — सह सोमेन वदन्ते समोषधयः।

राजँस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।

पंचम पञ्चपात्क्रम— १. ओषधयः सं। यस्मै कृणोति।

२. सं वदन्ते। कृणोति ब्राह्मणः।

३. वदन्ते सोमेन। ब्राह्मणस्तं।

४. सोमेन सह। तं राजन्।

५. सह राज्ञा। राजन् पारयामसि।

अन्त — राज्ञेति राज्ञा। पारयामसीति पारयामसि।

दूसरा द्विचक्र रथ

समान छन्द के दो मन्त्रों के समान द्विचक्र रथ।

अग्नि मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।।

ऋग्वेद १।१।१

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया।

अकारि रत्नधातमः।।

ऋग्वेद १।२०।१

१. अग्नि मीळे। अयं देवाय।।

ईळेऽग्निं। देवायायं।।

२. अग्नि मीळे। ईळे पुरोहितं।।

अयं देवाय। देवायजन्मने। ।

पुरोहितमीळेऽग्निं। जन्मने देवायायं।।

३. अग्नि मीळे। ईळे पुरोहितं। पुरोहितं यज्ञस्य।।

अयं देवाय। देवाय जन्मने। जन्मने स्तोमः।।

यज्ञस्य पुराहितमीळेऽग्निं।

स्तोमो जन्मने देवायायं।।

४. अग्निमीळे ईळे पुरोहितं। पुरोहितं यज्ञस्य।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'। यज्ञस्य देवं।।

अयं देवाय। देवाय जन्मने।

जन्मने स्तोमः। स्तोमो विप्रेभिः।।

देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं।।

विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं।।

५. अग्निमीळे। ईळे पुरोहितं। पुरोहितं यज्ञस्य।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'।

यज्ञस्य देवं। देवमृत्विजं।।

अयं देवाय। देवाय जन्मने। जन्मने स्तोमः।

स्तोमो विप्रेभिः। विप्रेभिरासया।।

ऋत्विजं देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं।।

आसया विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं।

६. अग्निमीळे। ईळे पुरोहितं। पुरोहितं यज्ञस्य।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'।

यज्ञस्य देवं देवमृत्विजं।।

अयं देवाय। देवाय जन्मने। जन्मने स्तोमः।।

स्तोमो विप्रेभिः। विप्रेभिरासया।

ऋत्विजमित्युत्विजं। आसयेत्यासया।।

७. होतारं रत्नधातमं। अकारि रत्नधातमः।।

रत्नधातमं होतारं। रत्नधातमोऽकारि।।

होतारं रत्नधातमं। अकारि रत्नधातमः।।

रत्नधातममितिं रत्नऽधातम्।

रत्नधातम इति रत्नधातमः।।

तीसरा द्विचक्र रथ

दूसरा प्रकार

१।१।१		१।२०।१
१—	१. अग्निमीळे।	अयं देवाय।।
	ईळेऽग्निं।	देवायायं।।
२—	१. अग्निमीळे।	अयं देवाय।।
	२. ईळे पुरोहितं।	देवाय जन्मने।
	पुरोहितमीळेऽग्निं।	जन्मने देवायायं।।

३— १. अग्निमीळे। अयं देवाय।।

२. ईळे पुरोहितं। देवाय जन्मने।।

३. पुरोहितं यज्ञस्य। जन्मने स्तोमः।।

यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्नि। स्तोमो जन्मने देवायायं।।

४— १. अग्निमीळे। अयं देवाय।।

२. ईळे पुरोहितं। देवाय जन्मने।।

३. पुरोहितं यज्ञस्य। जन्मने स्तोमः।।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'।

४. यज्ञस्य देवं। स्तोमो विप्रेभिः।।

देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं।।

विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं।।

५— १. अग्निमीळे। अयं देवाय।।

२. ईळे पुरोहितं। देवाय जन्मने।।

३. पुरोहितं यज्ञस्य। जन्मने स्तोमः।।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'

४. यज्ञस्य देवं। स्तोमो विप्रेभिः।।

५. देवमृत्विजं। विप्रेभिरासया।।

ऋत्विजं देवं यज्ञस्य आसया विप्रेभिः स्तोमो

पुरोहितमीळेऽग्निं। जन्मने देवायायं।।

६— १. अग्निमीळे। अयं देवाय।।

२. ईळे पुरोहितं। देवाय जन्मने।।

३. पुरोहितं यज्ञस्य। जन्मने स्तोमः।

'पुरोहितमिति पुरःऽहितं'।

४. यज्ञस्य देवं। स्तोमो विप्रैभिः।।

५. देवमृत्विजं। विप्रैभिरासया।।

६. ऋत्विजमित्यृत्विजं। आसयेत्यासया।।

७— १. होतारं रत्न धातमं। अकारि रत्न धातमः।।

२. रत्न धातमं होतारं। रत्न धातमोऽकारि।।

३. होतारं रत्नधातमं। अकारि रत्नधातमः।।

४. रत्नधातममिति रत्नधातम इति

रत्नऽधातमं। रत्नऽधातमः।।

त्रिचक्र रथ

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

ऋग्वेद १।२२।१९

प्रथम पाद   द्वितीय पाद   तृतीय पाद

प्रथम क्रम— विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इंद्रस्ययुज्यः।

व्युक्रम— कर्माणि विष्णोः। व्रतानि यतः। युज्य इंद्रस्य।

द्वितीय क्रम— विष्णोः कर्माणि। यतो व्रतानि। इंद्रस्ययुज्यः।

कर्माणि पश्यत। व्रतानि पस्पशे। युज्यः सखा।

व्युक्रम— पश्यत कर्माणि विष्णोः। पस्पशे व्रतानि यतः।

सखा युज्य इंद्रस्य।

प्रथम पाद— विष्णोः कर्माणि। कर्माणि पश्यत। पश्यतेति पश्यत।

द्वितीय पाद— यतो व्रतानि। व्रतानि पस्पशे। पस्पश इति पस्पशे।

तृतीय पाद— इंद्रस्य युज्यः। युज्यः सखा सखेति सखा।

चतुर्थ चक्र रथ

	१ पाद	२ पाद	३ पाद	४ पाद
प्रथम क्रम—	ओषधयः सं।	सोमेन सह।	यस्मैकृणोति।	तं राजन्।
व्युत्क्रम —	समोषधयः।	सह सोमेन।	कृणोति यस्मै।	राजँस्तं।
द्वितीय क्रम—	ओषधयः सं।	सोमेन सह।	यस्मै कृणोति।	तं राजन्।
	सं वदन्ते।	सह राज्ञा।	कृणोति ब्राह्मणः।	राजन्पारयामसि।
व्युत्क्रम —	वदन्ते समोषधयः।	राज्ञा सह सोमेन।		
	ब्राह्मणः कृणोति यस्मै।	पारयामसि राजँस्तं।		

प्रथमपाद — ओषधयः सं। सं वदन्ते। वदन्ते इति वदन्ते।

द्वितीयपाद —सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।

तृतीयपाद — यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणः इति ब्राह्मणः।

चतुर्थ पाद —सं राजन्। राजन्पारयामसि। पारयामसीति पारयामसि।

इस मन्त्र का रथ पाठ

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।

आस्मिन्हव्या जुहोतन।।

यजुर्वेद ३। १

समिधाग्निम्। समिधेति समिधेति समइधा।

अग्निं समिध। धृतैर्बोधयत। बोधयत धृतैः।।

समिधाग्निम्। समिधेति सम्इधा।।

अग्निं दुवस्यत। दुवस्यताग्निं समिधा।।

घृतैर्बोधयत। बोधयतातिथिम्। अतिथिं बोधयत घृतैः।

समिधाग्निम् समिधेति सम् इधा।

अग्निं दुवस्यत। दुवस्यत घृतैः। घृतै र्बोधयत बोधयत तिथिम।

अतिथिमित्यतिथिम्।

अर्ध ऋचानुसार

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।

योनूनं मित्रा वरुणावभिष्टय आचक्रेहव्य दातये।।

ऋधगित्था। इत्थ ऋधक्।। योनूनम्। नूनँय्यः।।

ऋधगित्था।। इत्था सः। स इत्थ ऋधक।।

योनूनम् नूनंमित्रावरुणौ। मित्रा वरुणौनूनँय्यः।।

ऋधगित्था। इत्था सः। समर्त्यः। मर्त्यः शशमे।

शशमे देवतातये। देवतातयेशशमे मर्त्यः स

इत्थ ऋधक।। योनूनम्। नूनं मित्रावरुणौ।

मित्रावरुणावभिष्टये। अभिष्टय आचक्रे।

आचक्रे हव्यदातये। हव्यदातय आचक्रऽभिष्टय

मित्रावरुणौ नूनंयः।। ऋधगित्था। इत्थासः।

समर्त्यः। मर्त्यः शशमे। शशमे देवतातये।

देवतातय इति देवतायते।। योनूनम्।

नूनं मित्रावरुणौ। मित्रावरुणावभिष्टये।

अभिष्टय अचक्रे। आचक्रे हव्यदातये।

आचक्रे इत्याचक्रे।।

इस मन्त्र का द्वितीय प्रकार
पदानुसार रथपाठ

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।

धियं घृताञ्चीं साधन्ता।।

ऋग्वेद अष्टक १, अध्याय १, वर्ग ३, मन्त्र ४।। = यजुर्वेद ३३।५७

मित्रं हुवे। वरुणं च। हुवे मित्र। च वरुणम्।।

मित्रं हुवे। हुवे पूतदक्षं। वरुणं च।

च रिशादसम्। पूतदक्षं हुवे मित्रं। रिशादसञ्च वरुणाम्।।

मित्रं हुवे। हुवे पूतदक्षम्।

पूतदक्षं वरुणम्। पूतदक्षमिति पूतदक्षम्।।

वरुणञ्चां च रिशादसम्। रिशादसमिति रिशादसम्।।

अर्ध ऋचानुसार

मित्रो वरुणो भवत्यर्यमा।

इन्द्रो बृहस्पतिर्विष्णुरुरुक्रमः।।

मित्रो वरुणः। इन्द्रो बृहस्पतिः। वरुणो मित्रः।

बृहस्पति रिन्द्रः। मित्रो वरुणः। वरुणो भवतु।।

इन्द्रो बृहस्पतिः। बृहस्पतिर्विष्णुः।।

भवतु वरुणो मित्रः। विष्णु बृर्हस्पति रिन्द्रः।।

मित्रो वरुणः। वरुणो भवतु। भवत्वर्यमा।।

इन्द्रो बृहस्पतिः। बृहस्पतिर्विष्णुः। विष्णुरुरुक्रमः।।

अर्यमा भवतु वरुणो मित्रः।।

उरुक्रमो विष्णुर्बृहस्पतिरिन्द्रः।।

मित्रो वरुणः। वरुणो भवतु। भवत्वर्यमा। अर्यमेत्यर्यमा।।

इन्द्रो बृहस्पतिः। बृहस्पतिर्विष्णुः। विष्णुरुरुक्रमः।

उरुक्रम इत्युरुरुक्रमः।।

इस मन्त्र का तृतीय प्रकार
पादानुसार रथ पाठ

अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपानती।।

यजुर्वेद ३। ७

अन्तश्चरति। चरत्यन्तः। अन्तश्चरति।

अस्य प्राणात्। प्राणादस्य। अस्य प्राणाद।।

चरति रोचना। रोचना चरत्यन्तः। अन्तश्चरति।

अन्तरित्यन्तः। चरति रोचना।।

प्राणादपानति। अपानति प्राणादस्य।

रोचनाऽस्य। अस्य प्राणादपानति। अपानतीत्यपअनति।।

अर्ध ऋचानुसार

।　　　　　　　।　　　।
धानावन्तं करम्भिणमपू पवन्त मुक्थिनम्।

।　　　।
इन्द्रः प्रातर्जुषस्व नः।।

यजुर्वेद २०। २९

धानावन्तं करम्भिणम्।

करम्भिणन्धानावन्तम्। धानावन्तं करम्भिणम्।

इन्द्रः प्रातः। प्रातरिन्द्रः। इन्द्रः प्रातः।

करम्भिणमपूपवन्तम्। अपूपवन्तं करम्भिणंधानावन्तम्।

धानावन्तं करम्भिणम्। करम्भिणमपूपवन्तम्।।

प्रातर्जुषस्व। जुषस्वप्रातरिन्द्रः। इन्द्रः प्रातः।

प्रातर्जुषस्व।। अपूपवन्तमुक्थिनम्।

उक्थिनमपूपवन्तं करम्भिणंधाना वन्तम्।

धानावन्त करम्भिणम्। धानावन्तमिति धानावन्तम्।

करम्भिणमपूपवन्तम्। अपूपवन्तमुक्थिनम्।।

अपूपवन्तमित्यापूप – वन्तम्। उक्थिनमित्युक्थिनम्।।

जुषस्वनः। नो जुषस्व प्रातरिन्द्रः। इन्द्रः प्रातः

प्रातः र्जुषस्व। जुषस्वनः। न इति नः।।

रथपाठ के इन भेदों को कोई विद्वान् द्विचक्री, त्रिचक्री और चतुश्चक्री रथपाठ कहते हैं। कोई पूर्वोक्त पाठ से अतिरिक्त भेदों को गिनते हैं।

त्रिचक्र तीन चारण वाले मन्त्र में होता है और द्विचक्री तथा चतुश्चक्री पाठ समान पद वाले दो पाद और चार पाद वाले मन्त्रों में होता है। इससे भिन्न मन्त्रों में नहीं होता।

प्रथम घन लक्षण

अन्तात्क्रमं पठेत्पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत्।
आदि क्रमंनयेन्तं घनमाहुर्मनीषिण:।।

ऋ०प्रा० ४। १४

पहले अन्त से आरम्भ करके आदि तक क्रम विधि से मन्त्र का पाठ करे, पुन: आदि से अन्त तक उसी क्रमपाठ विधि से पढ़े उसको घन पाठ कहते हैं।

८. घन पाठ

प्रथम प्रकार

पूर्वार्ध अन्तादादिपर्यन्त—

राज्ञेति राज्ञा। सह राज्ञा। सोमेन सह।

वदन्ते सोमेन। सं वदन्ते। ओषधय: सं—

आदितोऽन्तपर्यन्त—

सं वदन्ते। वदन्ते सोमेन। सोमेन सह।

सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।

उत्तरार्ध अन्तादादिपर्यन्त—

पारयामसीति पारयामसि। राजन् पारयामसि।

तं राजन्। ब्राह्मणस्तं। कृणोति ब्राह्मण:। यस्मै कृणोति—

आदितोऽन्तपर्यन्त—

कृणोति ब्राह्मण:। ब्राह्मणस्तं। तं राजन्।

राजन् पारयामसि। पारयामसीति पारयामसि।

इस मन्त्र का प्रथम घनपाठ—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयता तिथिम्।

आस्मिन्हव्या जुहोतन।।

यजुर्वेद ३। १

अतिथिमित्यतिथिम्। बोधयतातिथिम्।

घृतैर्बोधयत। दुवयत घृतै:। अग्निं दुवस्यत।

समिधाग्निं।। समिधेति समइधा। अग्निं दुवस्यत।

दुवस्यत घृतै:। घृतै र्बोधयत। बोधयतातिथिम्।

अतिथिमित्यतिथिम्।। जुहोतनेति जुहोतन।

हव्या जुहोतन। आस्मिन्हव्या।।

आस्मिन् हव्या जुहोतन। जुहोतनेति जुहोतन।।

द्वितीय घन लक्षण

शिखामुक्तवा विपर्यस्य तत्पदानि पुनः पठेत्।
अन्य घन इतिप्रोक्तऽइत्यष्टौ विकृतिः पठेत्।।

ऋ०प्रा० ४। १५

शिखा पाठ कहकर पुनः उन पादों को उलटा पढ़कर फिर क्रम से उच्चारण करे। यह व्याडि ऋषि के मत से घन पाठ का दूसरा प्रकार है।

द्वितीय घन पाठ

पूर्वार्ध

शिखा पाठ — ओषधयः सं। समोषधय। ओषधयः सं वदन्ते।

विपर्य पाठ — वदन्ते समोषधय।

पुनः पाठ — ओषधयः सं वदन्ते।।

शिखा पाठ — सं वदन्ते वदन्ते सं सं वदन्ते सोमेन

विपर्य पाठ — सोमेन वदन्ते सं।

पुनः पाठ — सं वदन्ते सोमेन।।

शिखा पाठ— वदन्ते सोमेन सोमेन वदन्ते वदन्ते सोमेन सह।

विपर्य पाठ — सह सोमेन वदन्ते।

पुनः पाठ — वदन्ते सोमेन सह।।

शिखा पाठ — सोमेन सुह सुह सोमेन् सोमेन सुह राज्ञा

विपर्य पाठ — राज्ञा सुह सोमेन्।

पुनः पाठ — सोमेन सुह राज्ञा।।

शिखा पाठ — सुह राज्ञा. राज्ञा सुह सुह राज्ञा।।

विपर्य पाठ— राज्ञेति राज्ञा।।

उत्तरार्ध

यस्मै कृणोति कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति

ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति ब्राह्मणः

कृणोति ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं।।

तं ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं।।

ब्राह्मणस्तं तं ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन्।

राजँस्त ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन्।।

तं राजन् राजँस्तं तं राजन् पारयामसि

पायामसि राजँस्तं तं राजन् पारयामसि।।

राजन् पारयामसि पारयामसि राजन्

राजन् पारयामसि।। पारयामसीति पारयामसि।

इस मन्त्र का घन पाठ

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।

ब्रह्मणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिवयेमिरे।।

ऋग्वेद १। १०। १

प्रथमार्ध

गायन्ति त्वा, त्वा गायन्ति, गायन्ति त्वा, गायत्रिणोः,
गायत्रिणस्त्वा गायन्ति। गायन्ति त्वा गायत्रिणः।।
त्वा गायत्रिणो, गायत्रिणस्त्वा, त्वा गायत्रिणो,
ऽर्चन्त्य,—ऽर्चन्ति गायत्रिणस्त्वा। त्वा गायत्रिणोऽर्चन्ति।।
गायत्रिणोऽर्चन्त्य, —ऽर्चन्ति गायत्रिणो, गायत्रिणो
ऽर्चन्त्य कर्म—ऽकर्मचन्ति गायत्रिणो। गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कम्।।-
अर्चन्त्यर्कमऽर्कमर्चन्त्य, र्चन्त्यकर्मऽर्किणो;
ऽर्किणोऽकर्मऽर्कम र्किणः।। अर्किण इत्यर्किणः।।

द्वितीयार्ध

ब्रह्माणस्त्वा, त्वा ब्रह्माणो, ब्रह्माणस्त्वा, शतक्रतो;
शतक्रतो त्वा ब्रह्माणो, ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो।।
त्वा शतक्रतो, शतक्रतो त्वा, त्वा शतकृत,
उदुच्छतक्रतो त्वा। त्वा शतक्रत उत्।।
शतक्रत उदुच्छतक्रतो, शतक्रत उद्वंशमिव;
वंशमिवोच्छतक्रतो, शतक्रतउद्वंशनिव।।

शतक्रतो इति शतऽक्रतो।।

उद्वंशमिव, वंशमिवोदुद्वंशमिव, येमिरे;

येमिरे वंशमिवोदु द्वंशमिव येमिरे।।

वंशमिव येमिरे, येमिरे वंशमिव, वंशमिव घेमिरे।

वंशमिवेति वंशम्ऽइव। येमिर इतियेमिरे।।

इस मन्त्र का घनपाठ

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृत्कबर्हिषः।

आ यातं रुद्रवर्त्तनी।।

यजुर्वेद ३३। ५८

दस्रा युवाकवो युवाकवो दस्रा दस्रा युवाकवः सुता।

सुतायुवाकवो दस्रा। दस्रायुवाकवः सुताः।।

युवार्कवः सुताः।। सुता युवाकवो युवाकवः सुता।

नासत्या। नासत्या सुता युवाकवो युवाकवः सुता

नासत्या।। सुतानासत्या नासत्या सुताः सुता नासत्या।

वृत्क बर्हिषः। वृत्कबर्हिषो नासत्या सुताः। सुता नासत्या

वृत्क बर्हिषः। वृत्कबर्हिष इति वृत्कबर्हिषः।।

आयातं यातमा यातं रुद्रवर्तनी।

रुद्रवर्तनीयात मायातं रुद्रवर्तनी।।

यातं रुद्रवर्तनी रुद्रवर्तनी यातं यातं

रुद्रवर्तनी रुद्रवर्तनीति रुद्रवर्तनी।।

इस मन्त्र का पञ्चसन्धि युक्त घनपाठ

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।

इच्छन्तीरुरुचक्षसम्।। ऋग्वेद १।२५।१६

१. परा मे। मे मे। मे परा। परा परा। परा मे।।

परा मे, मे परा, परा मे, यन्ति, यन्ति मे परा, परा मे यन्ति।।

२. मे यन्ति। यन्ति यन्ति। यन्ति मे। मे मे। मे यन्ति।।

मे यन्ति, यन्ति मे, मे यन्ति, धीतयो,

धीतयो यन्ति मे, मे यन्ति धीतयः।।

३. यन्ति धीतयः। धीतयो धीतयः। धीतयो

यन्ति। यन्ति यन्ति। यन्ति धीतयः।।

यन्ति धीतयो, धीतयो यन्ति, यन्ति धीतयो, गावः।।

गावो धीतयो यन्ति, यन्ति धीतयो गावः।।

४. धीतयो गावः। गावो गावः। गावो धीतयः।

धीतयो धीतयः। धीतयो गावः।

धीतयो गावो, गावो धीतयो, धीतयो गावो,

नः न गावो धीतयो, धीतयो गावो न।।

५. गावो न। न न। न गावः। गावो गावः। गावो न।।

गावो न न गावो, गावो न , गव्यूती;

गव्यूतीर्न गावो, गावो न गव्यूतीः।।

६. न गव्यूतीः। गव्यूतीर्गव्यूतीः।

गव्यूतीर्न। न न। न गव्यूतीः।

न गव्यूती, गव्यूतीर्न, न गव्यूतीर

ऽन्वःऽनु गव्यूतीर्नः न गव्यूतीरनु।।

७. गव्यूतीरनु। अन्वनु। अनु गव्यूतीः।

गव्यूतीर्गव्यूतीः गव्यूतीरनु।

गव्यूतीरन्वऽनु गव्यूर्तः गव्यूतीरनु।।

अन्वित्यनु।।

८. इन्छंतीरुरुचक्षसं। उरुचक्षसमुरुचक्षसं।

उरुचक्षसमिच्छंतीः। इच्छंतीरिच्छंतीः।

इच्छंतीरुरुचक्षसं।।

इच्छंतीरुरुचक्षस मुरुचक्षसमिच्छती

रिच्छंतीरुऽचक्षसम।। उरुचक्षसमित्पुरुऽचक्षसं।।

पञ्चसन्धियुक्त जटापाठ

१. पंच संधि — परा मे। मे मे। मे परा। परा परा। परा मे।।

जटापाठ — परा मे, मे परा, परा मे।।

२. पंच संधि — मे यन्ति। यन्ति यन्ति। यन्ति मे। मे मे। मे यन्ति।।

जटापाठ — मे यन्ति, यन्ति मे, मे यन्ति।।

३. पंच संधि — यन्ति धीतयः। धीतयो धीतयः।

धीतयो यन्ति। यन्ति यन्ति। यन्ति धीतयः।।

जटा पाठ— यन्ति धीतयो, धीतयो यन्ति, यन्ति धीतयः।।

४. पंच संधि — धीतयो गावः। गावो गावः। गावो धीतयः।

धीतयो धीतयः। धीतयो गावः।।

जटापाठ — धीतयो गावो, गावो धीतयो, धीतयो गावः।।

५. पंच संधि — गावो न। न न। न गावः। गावो गावः। गावो न।।

जटा पाठ — गावो न, न गावो, गावो न ।।

६. पंच संधि — न गव्यूतीः। गव्यूतीर्गव्यतीः।

गव्यूतीर्न। न न। न गव्यूतीः।।

जटा पाठ — न गव्यूतीर्गव्यूतीर्न न गव्यूती:।।

७. पंच संधि — गव्यूतीरनु। अन्वनु। अनु गव्यूती:।

गव्यूतीर्गव्यूती:। गव्यूतीरनु।।

जटापाठ — गव्यूतीरन्वनु गव्यूतीर्गव्यूतीरनु।। अन्वित्यनु।।

८. पंच संधि — इच्छंतीरुरुचक्षसं। उरुचक्षसमुरुचक्षसं।

उरुचक्षसमिच्छंती:। इच्छंतीरिच्छंती:।

इच्छंतीरुरुचक्षसं।।

जटापाठ —

इच्छंतीरुरुचक्षसमुरुचक्षसमिच्छंतीरिच्छंतीरुरुचक्षसं।

उरुचक्षसमित्युरुऽचक्षसं।।

अन्तोक्त्वा

इन जटादि घनान्त आठ विकृति पाठों में से रेखा, ध्वज और रथ पाठ सब मन्त्रों में नहीं होता। क्योंकि यह तीनों पाठ समान पद वाले समपद में ही होता है, विषम पाद में भी समपाद होना आवश्यक है, शेष जटा, माला, शिखा, दण्ड और घन यह पाँचों पाठ सब मन्त्रों में होता है।

स्मृत्यैरेतैस्थ:

यह आठों प्रकार के पाठ वेद मन्त्रों के स्मरण करने के लिये हैं, जिससे वेदों का लोप न हो, मन्त्रों में मिलावट तथा संदेह उत्पन्न न हो। इसी कारण असंख्यात वर्ष व्यतीत होने पर भी अन्य ग्रन्थों की भाँति वेदों में मिलावट नहीं हो सकी।

भारत वर्ष के किसी कोने में रहने वाले घनान्त वेद पाठी विद्वानों से एक ही प्रकार का पाठ सुनाई देगा। वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने इन घनपाठी विद्वानों के सहयोग से ही संहिता पाठ के एक एक मन्त्र को शुद्ध किया था, तभी वेद संहिताओं के विषय में संदेह रहित हो जाने पर ही सत्यार्थ प्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के दो अभिप्राय में स्वयं स्पष्ट कहा कि ''चारों वेदों'' (विद्या धर्म युक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त 'स्वत:' प्रमाण मानता हूँ।

वेदं शरणम् आगच्छामि
सत्यं शरणम् आगच्छामि
यज्ञं शरणम् आगच्छामि

इति